Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगला अंक

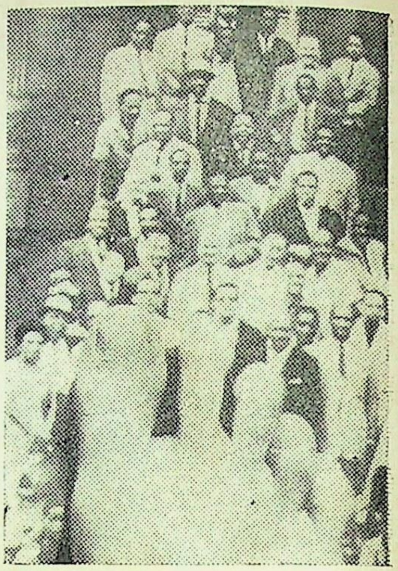

वतन के सरपरस्तों और वतनपरस्तों के बीच बढ़ती हुई दूरी में 'रोशनी' और 'अंधेरे' के खेल के तहत 'जिंदगी' का अर्थ भी 'मौत' ही क्यों होता जा रहा है ?

यानी इस बार पढ़िए, राजनीतिक भ्रष्टाचार, अफसरशाही और सामाजिक विसंगतियों के विभिन्न पहलुओं को उजागर करती—**इस्मत चुगताई, रमेश उपाध्याय, बीर राजा, देशबंधु डोगरा 'नूतन', राकेश वत्स, मणिका मोहनी, रामजन्म शर्मा, ज्ञानप्रकाश विवेक, कारगिल (रोमानिया) की सशक्त कहानियां.**

- **आते हुए लोग**

—विनय बिहारी सिंह की कहानी

- **शहर के बीच उभरता एक और शहर**

—राजस्थान को ऐतिहासिक और सामाजिक पहचान देनेवाले शहर—बीकानेर की बिगड़ती-संवरती तस्वीरों का जायजा दे रहे हैं—**मानिक बछावत**

- **गलियां : जहां इतिहास कैद है !**

—'नादां की दोस्ती, जी का जंजाल'—दोस्ती और दुश्मनी के कहर भरे अंजाम की एक गुमनाम दास्तान—**बाला दुबे** की कलम से.

- **मेरे सात जनम**

—हंसराज रहबर की बेलौस आत्मकथा का अगला महत्वपूर्ण अंश

- **भरतमुनि के वंशधर**

वह बीवियों का मदरसा है
न बाबुओं का घर, यह
रंगमंच है...
—गिरीश कु. सिंह

साथ ही—

- तुलसीदास चंदन घिसैं
- लघुकथाएं
- गजलें
- कथा–सूत्र
- पखवारे की पुस्तकें
- हलचल
- चलते–चलते
- और भुलाए न बने
- मथुरादास की डायरी
- तस्वीर बोलती है
- व्यंग्यचित्र

सारिका

१ मई, १९८४

सारिका को पढ़ने का मतलब है, हर बार एक नया अनुभव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका

कहानियों और कथा-जगत की जीवंत पाक्षिकी

वर्ष : २४; अंक : ३५५; १६ से ३० अप्रैल, १९८४

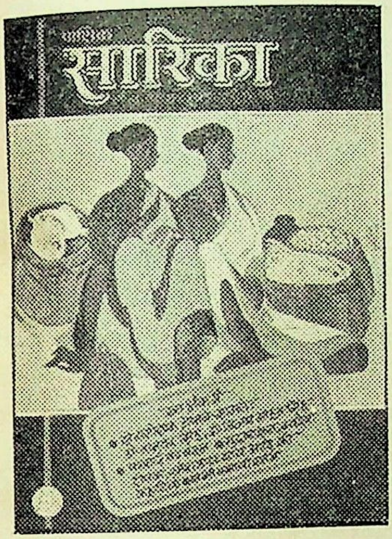

आवरण चित्र : बी. प्रभा
पारदर्शी : मुल्कराज सिदाना

सहायक संपादक :
अवधनारायण मुद्‍गल
उप-संपादक :
रमेश बत्तरा, सुरेश उनियाल, बलराम, महेश दर्पण
सज्जा : **सुमीता चक्रवर्ती**

कहानियां

8. दुर्घटना : मुद्राराक्षस
15. ठिकाने : शंकर
22. मुस्कान : स्वदेश दीपक
33. बोझ : रमेश उपाध्याय
37. मिस्टर ग्रीन को ढूंढते हुए (अमरीकी) : साल बैलो
46. मुर्दाखोर : विजयकिशोर मानव
51. सौवीं रात (तमिल) : आदवन सुंदरम
63. दाद की बेदाद : मुज्तबा हुसैन
66. और कल? : हिमानी भट्ट

संस्मरण

54. वली अहमद से खिताब : रघुराज गुप्त

बातचीत

56. कहानी कहां बनती है : नामवर सिंह के साथ विजयमोहन सिंह की बहुमतलब बातचीत.

लघु रचनाएं

17. होनहार : कुलदीप जैन
18. गाईड : पृथ्वीराज अरोड़ा
25. कृष्ण का दुख : हरीश नवल
26. पहलू दर पहलू : अखिलेंद्रपाल सिंह
29. सलामी : अनवर शमीम
32. आधुनिकता : श्रीनिवास जोशी
38. ऊंचा पद : गंभीरसिंह पलनी
41. कोशिश : यश खन्ना 'नीर'
48. भगवान और विज्ञापन : शंकर पुणतांबेकर
52. अपना-अपना नशा : हीरालाल नागर
69. बख्शीश : मातादीन खरवार

अन्य आकर्षण

6. आपकी बात
19. तुलसीदास चंदन घिसैं : हरिशंकर परसाई
31. मथुरादास की डायरी : मथुरादास
35. तस्वीर बोलती है : योग जॉय
44. गलियां जहां इतिहास कैद है : बाला दुबे
50. कथासूत्र : राकेश वत्स
68. भरतमुनि के वंशधर : सूत्रधार
70. पखवारे की पुस्तकें : चंद्रकांत बांदिवडेकर
73. हलचल

पाठकों की सुविधा के लिए

हमें अक्सर पाठकों से शिकायती पत्र मिलते हैं कि उन्हें 'सारिका' अपने बुक स्टॉल पर मिल नहीं पाती, उनके पहुंचने से पहले ही सारी प्रतियां बिक जाती हैं. पाठकों की सुविधा के लिए हम उन्हें सलाह देंगे कि वे अपना चंदा आज ही ड्राफ्ट/मनीआर्डर के रूप में दायीं ओर दिये गये कूपन के साथ हमें भेजें ताकि उन्हें 'सारिका' डाक से नियमित भिजवायी जा सके.

चंदा तथा कूपन कृपया इस पते पर भेजें :

सर्कुलेशन मैनेजर,
सारिका, टाइम्स ऑफ इंडिया
7 बहादुरशाह जफर मार्ग,
नयी दिल्ली-110002

अब चंदे की रियायती दरें हैं :
वार्षिक : 80 रुपये
अर्धवार्षिक : 41 रुपये

कृपया मुझे/हमें निम्न पते पर एक वर्ष छह माह के लिए 'सारिका' भेजने की व्यवस्था करें. समुचित राशि संलग्न है.
नाम................
पता. . . . .
....
हस्ताक्षर.............

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकी बात

क्या नहीं था अंक में

अंक बहुत रोचक, मनोरंजक, ज्ञानवर्द्धक, शिक्षाप्रद एवं तथ्यपूर्ण रहा. आद्योपांत पढ़कर मन प्रसन्न हो उठा. ऐसे तो संपूर्ण अंक ही पठनीय है परंतु **लपटें (नवारुण वर्मा), सिद्धांत का संकट (परसाई), गलियां : जहां इतिहास कैद है (बाला दुबे), दास्तान अश्वमेध यज्ञ को (मथुरादास), शहर के बीच उभरता एक और शहर : ग्वालियर (हरीश पाठक), पुस्तक का उपयोग और दुरुपयोग (सुरेश उनियाल)** आदि रचनाएं विशेष अच्छी लगीं.

▣ **शकुनचंद गुप्त विशारद, बरेली**

चारित्रिक पतन की पड़ताल

कहानी **लपटें** बहुत पसंद आयी. असम आंदोलन को स्पष्ट करनेवाली इस कहानी के लेखक **(नवारुण वर्मा)** को बधाई. **प्रस्थान (नरेंद्र मौर्य)** कहानी आज के आभिजात्य वर्ग के चारित्रिक पतन को स्पष्ट ढंग से प्रस्तुत करती है. आशा है **सारिका** आगे भी ऐसी ही जीवंत कहानियां प्रस्तुत करती रहेगी.

▣ **विजय जी, इलाहाबाद (उ.प्र.)**

ये लवर्स कहां पाए जाते हैं ?

पेशे से डाक्टर हूं. मातृभाषा तमिल है. **सारिका** शुरू से ही पढ़ रही हूं. **लवर्स (सुरेंद्र अरोड़ा)** कहानी के विषय में कुछ कहना चाहती हूं.

: कुछ ऐसा लगता है, लेखक का उद्देश्य ही यह साबित करना है कि अस्पतालों में क्या हो रहा है. खासकर एक पुरुष और स्त्री के बीच.

· बार-बार नर्सों का फ्राक को खींचना, हाथ फेरना—कुछ ज्यादती ही है. सुबह साढ़े ग्यारह बजे किसी भी नर्स को सोने की फुर्सत नहीं मिलती. ऑपरेशन के बाद तीनों मरीजों का एक साथ आना और फिर वार्ड में आकर डाक्टर का उनकी एग्जामिन करना वास्तविकता से कोसों दूर है.

सारिका : अंक ३५०
१–१५ फरवरी, १९८४

मैट्रन की बातें और विक्टोरिया का प्रवेश जिन शब्दों में दिखाया गया है—वास्तविकता से परे हैं. मेट्रन की बातें —'ऐ मिसी बाबा, तुम किदर जाता, डाक्टर कुमार के पास, तुमको खा जायेगा. मत जाओ मिसी बाबा. हम तो ये लवर्स लोग से तंग आ गया. इशक कर लिया क्या, ओह गौड यही सब करने का वास्ते तुम इदर में आता. ये और—डाक्टर लोग भी इन छोकरी लोग को मटन का पीस समझता." मैंने तो पिछले सोलह वर्षों में किसी मेट्रन को इस तरह बोलते नहीं सुना. जहां भी स्त्री-पुरुष एक साथ काम करते हों, आपसी संबंधों की एकाध घटना हर जगह ही होती है.

कम से कम **सारिका** का स्तर एवं कहानियों के चयन को देखते हुए उसमें छपने लायक कहानी बिल्कुल नहीं है. **नवारुण वर्मा** की कहानी **लपटें** मार्मिक है.

▣ **गीता चटर्जी, कलकत्ता**

अस्पतालों के स्थायी मरीज

समझ नहीं आता विशेषांकों की क्या आवश्यकता है. **सारिका** के सामान्य अंक ही इतने योग्य होते हैं कि विशेषांकों को 'फेल' कर सकें. आपने इस बार भी तुलसीदास से चंदन घिसवाया लेकिन बात कुछ बनी नहीं. लगता है बाबा तुलसी (बतौर हरिशंकर परसाई) अनिच्छा से पेश आ रहे हैं—कहीं यह फागुनी मौसम का असर तो नहीं? कहानियों में **सिलसिले खत्म नहीं होते (कैलाश नारद), किस्सा पांचवे दरवेश का (चंद्रमोहन प्रधान)** एवं **बूढ़े पीटर की कब्र (जयशंकर)** बेहद पसंद आयीं. **लवर्स (सुरेंद्र अरोड़ा)** पर मेरे एक मित्र ने 'वल्गर' होने का आरोप लगाया है लेकिन मैं व्यक्तिगत रूप से यह नहीं मानता. अस्पताल की जिंदगी भी अजीब होती है. वहां किसी न किसी रूप में सभी बीमार रहते हैं—डाक्टर, मरीज, नर्स, वार्ड ब्याय, मेहतर सभी. **लवर्स** इन्हीं बीमारों की एक बीमारी का एक जीवंत 'पोर्ट्रेट' है.

कथाकार **रमाकांत** के 'वर्षांत आशाजनक वर्षारंभ आशातीत' शीर्षक पत्र के संदर्भ में—उन्होंने अपने यहां के श्रेष्ठ जासूसी कथाकार 'गोपालदास गहमरी' का जिक्र किया है. मेरी शंका यह है कि गहमरी उपनाम से प्रसिद्ध इस साहित्यकार का वास्तविक नाम क्या है? गोपाल राय, गोपाल राम या गोपालदास? मैंने तो अब तक पहले दो नाम ही सुने-पढ़े थे. यह तीसरा नाम शायद रमाकांत जी की उपज है. वैसे गहमरी जी के पैतृक कस्बे गहमर (जि. गाजीपुर उ. प्र.) के हनुमान चौतरे के प्रांगण में स्थापित एक स्मारक पर उनका नाम गोपाल राम गहमरी अंकित है जो निश्चित रूप से प्रामाणिक है. आशा है सुधीजन ध्यान देंगे.

▣ **सिद्धेश्वर सिंह 'मधुकर', नैनीताल**

परसाईजी को क्या हो गया!

लपटें (नवारुण वर्मा) कहानी ने हृदय को अंदर तक झकझोर दिया. इस कहानी ने आज के समाज के मौजूदा हालात पर कुछ सोचने के लिए बाध्य किया. **हरिशंकर परसाई** पता नहीं क्यों पसंद नहीं आ रहे. **हड़ताल (विश्वनाथ)** शीर्षक से प्रकाशित कहानी नयी चेतना कही जा सकती है. इसके साथ ही कहना चाहूंगा कि **तस्वीर बोलती है** में मौलिक (स्वरचित) शीर्षकों को ही मान्यता दें.

▣ **अजय कुमार जैन, नजीबाबाद**

1-15 अप्रैल, 1984 अंक में **बाला शर्मा** के उपन्यास **आंधी और तिनके** का एक अंश **केन से उठते हुए** शीर्षक से प्रकाशित हुआ था. यह संपूर्ण उपन्यास पुस्तक रूप में **वातायन प्रकाशन** से शीघ्र प्रकाशित होने जा रहा है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकृति, और कला की जीत

सारिका में एक खूबसूरत परिवर्तन देखने को मिला. वह है, पिछले कई अंकों से अब तक लगातार आवरण पृष्ठ पर महिलाओं के आकर्षक, मोहक चित्र की जगह प्राकृतिक, कला-चित्र, आदि का प्रकाशन. बहुत-बहुत धन्यवाद. दूसरी तरफ रचनाओं के चुनाव में काफी सतर्कता नजर आ रही है. ढेरों बधाई. **हंसराज रहबर** का 'आत्म-कथा-अंश' **मेरे सात जनम** बहुत ही अच्छा लगा. **लपटें (नवारुण वर्मा)** कहानी बहुत अच्छी लगी. **मानव अस्थियां** (पालीवाल दिनेश गीत) लघुकथा उत्कृष्ट रही. **अहद प्रकाश** की **गजल** बहुत ही बढ़िया लगी.

▣ **अकिंचन, रूहरसा (बिहार)**

यह टूटन कहां पहुंचायेगी ?

कहानी **हडताल (विश्वनाथ)** पढ़ी. प्रबंधकों का हिंदुस्तान में आम हड़ताल के प्रति जो रवैया रहा है, उससे ऐसा लगता है, कि वे इस सोच पर चल रहें हैं, कि मजदूर झुक जायें तो ठीक, अन्यथा उन्हें तोड़ दिया जाये. यही तोड़ना अब तक प्रबंधकों के लिए आसान और फायदेमंद रहा है. लेकिन एक प्रश्न देश के शुभचिंतकों को अवश्य मथ रहा होगा—क्या होगा अंजाम इस टूटन का?

▣ **राकेश कुमार, रांची**

सूत्रधार और नटी को निमंत्रण

रंगमंच की गतिविधियों एवं समस्याओं पर अलग से पन्ना (**भरत मुनि के वंशधर**) देने के लिए साधुवाद. समाज के अछूते अंग पर सामग्री देना, वह भी वास्तविकता के एकदम करीब से, जोखिम ही नहीं साहस का भी काम है, चाहे वह कहानी हो या अन्य क्षेत्र. परंतु बड़ी पत्रिका होने के नाते एक बात कहना चाहूंगा—कोई भी स्तंभ बड़े शहरों तक ही सीमित न रह जाये, क्योंकि भारत मात्र कलकत्ता, दिल्ली और बंबई ही नहीं है, और भी छोटे शहर हैं, जहां बहुत कुछ हो रहा है, पर 'मंच' की कमी है. अभी नाट्य जगत में बिहार ने आशातीत सफलता प्राप्त की है, नाटक के प्रति लोगों का रुख बदला है, परंपरागत फूहड़ नौटंकी की जगह प्रगतिशील परिष्कृत नाटकों ने ले ली है. . . इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है—बिहार नाट्य संघ का सक्रिय होना एवं बिहार के विभिन्न छोटे-बड़े शहरों में अखिल भारतीय स्तर पर नाट्य प्रतियोगिताओं का होना, जिनमें गैर व्यवसायी संस्थाएं ही भाग लेती हैं तथा बेहतर एवं प्रयोगात्मक नाटकों का प्रदर्शन करती रही हैं.

समान विषय की समस्याएं भी प्रायः समान ही हैं, परंतु बड़े शहरों की तुलना में छोटी जगहों में साधन एवं संभावना की समस्याएं अवश्य ही कुछ मायने में अलग एवं कठिन हैं, जिन्हें सबों के सामने प्रस्तुत करना **सारिका** का धर्म है. आशा है आपका यह स्तंभ जल्द ही दिल्ली से हमारी ओर चल पड़ेगा.

▣ **पुलिन मित्र, डाल्टनगंज (बिहार)**

खुश्बू आ भी सकती है . . .

खासकर **सारिका** की **लघुकथाएं** बहुत अच्छी लगती हैं क्योंकि ये लघुकथाएं ही दिल को छूती हैं. और मुखपृष्ठ के बारे में मेरा तो यही कहना है—

मुखपृष्ठ पर आपने
प्लास्टिक के फूलों को देकर
कम से कम उन्हें
फूल का दर्जा तो दिया है.

▣ **सुनील कुमार कुरली, खड़गपुर.**

तस्वीर बोलती है

सारिका, अंक : ३५०

पुरस्कार विजेताओं को बधाई

प्रथम पुरस्कार : ५० रुपये

इस उम्मीद में कि शायद कल तू
मुझे उठायेगा!
मैं तो न बन सका अर्जुन, क्या तू श्रवण
बन पायेगा?

▣ गोपाल सोनी, द्वारा रमेशचंद्र सोनी, आरक्षी निवास, मंगलाबाजार, पिपरिया (म. प्र)

द्वितीय पुरस्कार : ३० रुपये

अपने अतीत के कंधों पर, वर्तमान
साकार लिये,
देख रहा है, नयी मंजिलें, अपना ही
संसार लिये.

▣ रामकुमार सिंह चौहान, ग्राम पो-अटौरा बुजुर्ग, जिला—रायबरेली

तृतीय पुरस्कार : २० रुपये

फिर रहे हैं इस कड़कती धूप में हम,
पीढ़ियों का बोझ कंधे पर उठाये.
पांव अपने ही सही, पहुंचे कहां पर,
रास्ते हैं पांव के नीचे पराये.

▣ कु. नीतिका गुप्ता, द्वारा अशोक गुप्ता, भारतीय स्टेट बैंक, स्याऊ, बिजनौर (उ. प्र.)

प्रशंसित शीर्षक

कब तलक यूं चीखना नारे लगाना है हमें
कोई बतलाए कहां ए दोस्त, जाना है हमें
हर तरफ गतिरोधक, अवरोधक कहां
तक जूझिए,
भागते ही भागते क्या टूट जाना है हमें?
—अहद 'प्रकाश'

▣ गंगाशरण 'विनम्र', रुड़की (उ.प्र.)

सिर्फ आंखें ही बचो हैं चंद चेहरों में,
बेजुबां सूरत, जुबानों तक
पहुंचती है.

▣ श्रीमती मधु मिश्र, गोरखपुर

एक दुनिया है मेरी नजरों में
पर वो दुनिया हमें नहीं मिलती.
—फिराक

▣ अरुण श्रीवास्तव, बेतिया (बिहार)

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्घटना

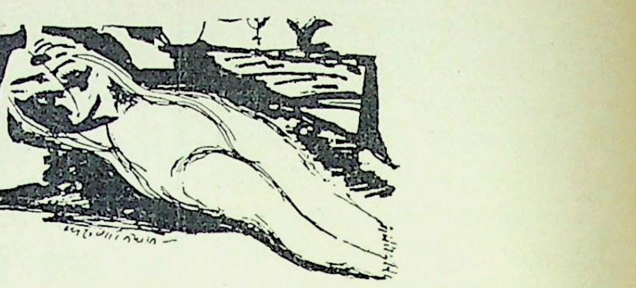

▫ मुद्राराक्षस

कितना होता होगा पांच हजार रुपया ? पांच हजार! शायद एक बड़े घड़े में भरा जाये तो भी न समाए या फिर उसके लिए बहुत ही बड़े लोहे के संदूक की जरूरत होती हो. हरी ने सोचा और उस जंगली पौधे के मुलायम पत्तों का गट्ठा घास की डोरी में बांध लिया जिसे वह कुकरौंधा कहता था और जिसके बारे में उसका खयाल था कि उसके रस से चोट ठीक हो जाती है.

कितना होता होगा पांच हजार रुपया? और अगर वह मिले तो कैसे रखा जा सकेगा? कहां रखा जा सकेगा?

कुछ बरस पहले किशनचंद के घर डकैती पड़ी थी. डाकू एक बहुत भारी लोहे का संदूक घर से बाहर लुढ़का लाए थे और पूरे एक पहर उसे कुल्हाड़ियों से काटते रहे थे. मगर उसमें बीस हजार के जेवर और रुपये थे. पांच हजार के लिए उतना बड़ा संदूक नहीं चाहिए. उसका चौथाई होगा. लेकिन संदूक तो चाहिए और उसमें एक ताला भी चाहिए. ताला हो तो चाभी भी चाहिए.

और सिर्फ यही क्यों, संदूक रखने के लिए थोड़ा मजबूत दरवाजा चाहिए. उस दरवाजे पर भी ताला चाहिए. चोर कभी-कभी फूस हटाकर घुस आते हैं. छत भी होनी चाहिए.

वह सब हो सकता है. पांच हजार रुपये हों तो संदूक और दरवाजा और ताला खरीदे जा सकते हैं. खरीदने तो होंगे ही.

मगर यह सब इतना आसान होगा क्या? ताला लगाने के लिए दरवाजा ऐसा चाहिए जिसमें लोहे का कुंडा और जंजीर लगी हो. तालियां बचाकर रखनी होंगी. खो जायें तो मुसीबत खड़ी हो सकती है. तालियां रखने के लिए भीतरी जेब लगा हुआ कुर्ता चाहिए.

खासा भारी झंझट है. हरी को अजीब-सी बेचैनी हुई. उस बेचैनी की भाषा बहुत सही नहीं थी लेकिन वह थी. कुछ संचित करने का यह पहला एहसास उसके लिए बिल्कुल अजनबी और किसी हद तक त्रासद था.

संचय के साथ संतुष्टि और सुख उसके लिए अनजाना था.

जाने कितनी पीढ़ियां हरी की गुजरी होंगी. उन लोगों ने यह जाना ही नहीं था कि संचय क्या होता है. खाना पकाने के किसी बर्तन और चूल्हे तक के स्वामित्व को उन्होंने कभी नहीं जाना था. हरी जिस दुनिया का आदमी था उसमें दो बहुत साफ हिस्से हो गए थे, एक हिस्सा उनका जिनके पास अपनी कही जाने वाली चीजें थीं—घर, बर्तन, कपड़े, दरवाजे, कुआं, खेत, जानवर. और दूसरे वे लोग थे जिनकी जरूरतें सिमटकर उनकी खाल के नीचे रह गई थीं. कमर पर बंधा मैल से काला हो चुका अंगोछा भी उनका अपना है यह उन्होंने कभी नहीं जाना था. कुछ संचित करने, कुछ अपना बना सकने की चाह जाने कब मर गई थी और अब उनके यहां पैदा होने वाला हर नया व्यक्ति बिना इस प्रवृत्ति के ही पैदा होना सीख गया था.

थोड़ा-सा बेचैन होकर हरी ने बबूल के उन दरख्तों की तरफ देखा जिनके कांटे प्रेत के दांतों की तरह तीखे सफेद चमक रहे थे. उनकी पत्तियां गायब हो चुकी थीं और भूरे आसमान पर उन पेड़ों की शाखें इस तरह छपी थीं जैसे काले खून वाली शिराएं सूखकर वहां छप गई हों.

बबूल का पेड़ किस कदर बेडौल होता है. जड़ से लेकर पतली टहनियों तक कहीं किसी अंश में सुघड़ता वहां नहीं होती. बेहद खुरदरे काले और बेडौल तने पर गोंद रिस-रिस कर इस तरह सूख जाता है जैसे घाव सड़ गए हों.

उसने हाथ में थमे पत्तों के बंडल को देखा और घर की ओर अलसाया-सा बढ़ चला.

फर्श पर बहुत सड़े कपड़ों से आधी ढकी छल्ली कराह रही थी. उसके सिर और दोनों कंधों पर अस्पताल वालों ने बहुत उजली पट्टी बांध दी थी. कूल्हे से लेकर घुटने तक उतना ही सफेद पलस्तर चढ़ा दिया गया था. जब वह सब ताजा था उस वक्त उसकी सफेदी में एक खास शान और भड़कीलापन था. लेकिन चंद रोज में ही उस सफेद आवरण पर मिट्टी और गंदगी के भद्दे दाग पड़ चुके थे. कल छल्ली के जख्मों में बहुत दर्द था. उनसे चिपचिपा-सा कुछ बह कर पट्टियों से बाहर झलकने लगा था.

अपनी ज्यादा विश्वसनीय दवा लगाने की गर्ज से हरी ने पट्टियां खोल दी थीं. घावों के रिसकर सूखने से पट्टियों की परतें सूख गई थीं.

हरी ने छल्ली की चीखों के बावजूद घाव नीम के पानी से धोकर उसमें कई पत्तों का रस निचोड़ दिया था और पट्टी दुबारा बांध दी थी. पट्टी बांधने में जो बेशऊरी हुई थी उसकी वजह से हर दाग अलग-अलग जगह फैल गया था. दागों से भरी उन पट्टियों में पत्तों के रस के गंदे हरे रंग और मिट्टी ने सफेदी चर डाली थी और वे पट्टियां किसी हद तक वीभत्स हो उठी थीं.

आज तकलीफ और ज्यादा हो गई थी और छल्ली या तो जल्दी-जल्दी सो जाती थी या बेहोश हो जा रही थी. चिंतित हरी ज्यादा कारगर दवा कुकरौंधे की तलाश में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकल आया था.

वैसे तो उसे जिंदगी और मौत दोनों के ही सही अर्थ मालूम नहीं थे बल्कि वह उनसे किसी हद तक असंपृक्त ही था लेकिन छल्ली मर जाय यह कल्पना वह अपने से दूर ही रखना चाहता था. छल्ली बचेगी इसी की उम्मीद उसने ज्यादा कर रखी थी. यह विश्वास और भी दृढ़ इसलिए हो गया था कि जिस तरह की दुर्घटना से बचकर वह यहां तक आ सकी थी उससे इस तरह कितने लोग बच पाए थे? चमत्कार ही था कि छल्ली बच गई थी.

वे दोनों उस रात मेला से वापस लौट रहे थे. मेला वे घूमने नहीं काम के लिए गये थे. मेले के इंतजाम में मजदूरी का बहुत-सा काम निकल आता था.

इस बार मेला कुछ ज्यादा ही सुखद रहा. पहले तो उन्हें दो हलवाइयों का सामान बैलगाड़ी से उतरवाने और उसे सजाने में मदद करने का काम मिला.

हलवाई कुछ सामान तो ताजी मिठाइयां तैयार करने के लिए लाया था और कुछ बना बनाया भी लाया था.

"देखो कुछ गिरने न पाए. गिरेगा तो मिट्टी लग

वे मेला देखने नहीं उसमें मजूरी करने गये थे कि लौटते में एक भयंकर दुर्घटना का शिकार हो गये. . . और यहीं से शुरू हुआ दुर्घटना से पूरी तरह असंपृक्त लोगों का उससे जुडाव. . . सांत्वना, सहयोग, तमाशा बनने के बाद भी दुर्घटनाग्रस्तों को क्या हासिल हुआ. . . ? सबक. . .क्षतिपूर्ति या एक और दुर्घटना का शिकार हो पाने के अवसर की चाह. . .?

जायेगी." हरी सामान उतारते वक्त ज्यादा ही सावधानी दिखाते हुए छल्ली और दूसरे मजदूर को हिदायत देने लगा. सामान उतारने के बाद उसने मिट्टी और ईंटों की मदद से एक भट्ठी भी तैयार की. काम खत्म करके थोड़ी-सी झिक-झिक और आजिजी के प्रदर्शन के बाद साढ़े पांच रुपये मिले और गुड़ की मिठाई भी. और यह काम खत्म करते ही उन्हें उस तमाशे वाले के यहां काम मिल गया जो एक छोलदारी के अंदर बहुत से टेढ़े-मेढ़े आईने लगा रखता था जिनमें से किसी में आदमी मोटा दिखता था किसी में पतला. उन शीशों को लगवाते वक्त वह छल्ली की बेढंगी आकृतियों पर बेतरह हंसता रहा था.

उसे सबसे ज्यादा मजा झूले वाले चर्खे को लगवाने में आया. जरा-सा असावधान होने पर चर्खे का वह सिरा फिर ऊपर जा लटकता था जिस पर सबसे आखिर में झूला लगाने की कोशिश की जा रही थी. एक बार तो उस सिरे से उलझी हुई छल्ली लटककर ऊपर जाते-जाते बची. हरी को बेतहाशा हंसी आती रही थी.

काम खत्म करके उन्होंने गुड़वाली मिठाई खाकर नहर से पानी पिया. हाथ-मुंह धोया और आधे जमे मेले की सैर की. इसके बाद रास्ते के लिए थोड़े से भुने चने खरीदकर पोटली में बांध लिए.

हरी के जैसे और भी बहुत से लोग आये होंगे और उनमें से ज्यादातर उसी की तरह रात उतरते घर लौट रहे होंगे क्योंकि मेले की गर्द और गैसबत्ती की रोशनियां पीछे छूटते हुए देखने पर हरी को लगा सैकड़ों लोग उसी की तरह धुंध में तैरते चले आ रहे हैं.

इस तरह की भीड़ अजीब होती है. उसमें एक दूसरे को जोड़नेवाला अर्थवान लगभग कुछ भी नहीं होता. संवाद लायक मुद्दे तो बिल्कुल ही नहीं होते. भेड़ों की निरीह भीड़ की तरह वे यात्रा करते हैं.

भीड़ में एक दूसरे से अपने को जोड़ने के लिए ही जैसे किसी ने गाना शुरू कर दिया. पतली-तीखी और किसी कदर उदास आवाज में गाया जानेवाला बिदेसिया उनके अपने अकेलेपन को किनारे धकेलकर उनके साथ इस तरह चलने लगा जैसे वही उनका अपना हो.

रात अभी बहुत बाकी थी. बहुत घने अंधेरे में धुंध की

अपारदर्शी झिल्ली हर चीज पर चढ़ गई थी. इतने अंधेरे के बावजूद जमीन से चिपकी रेल की पटरियां चमक रही थीं. पटरियों की दो कतारों के बाद शायद और भी होंगी.

दाईं तरफ बिल्कुल बेजान ठंडी मालगाड़ी की ऊंची दीवार थी. वे सब कोई ढाई-तीन सौ थे. पटरियों के आगे स्टेशन पार करने के बाद किनारे-किनारे उन्हें कई मील आगे जाना था. सुबह तक उनमें से ज्यादातर लोग पैदल चल कर भी अपने-अपने गांव पहुंच सकते थे. लगभग सभी थके हुए थे और ऐसा लग रहा था जैसे फटी मैली चादरों में लिपटे हुए बड़े-बड़े बेडौल पत्थर अंधेरी धुंध को फोड़ कर निकल रहे हों और पटरियों पर सरकते जा रहे हों.

हरी ने कंधे पर रखी चने की पोटली बगल में दबा ली और पीछे घूमकर देखा. धुंध और अंधेरे में किसी चेहरे को पहचान पाना सहज नहीं था. लुढ़की आ रही भीड़ में दो पटरियों के बीच तीन आकृतियां औरतों की जैसी थीं. उन्हीं में छल्ली भी होगी.

हरी इस उबाऊ एकरस यात्रा को तोड़ने की नजर से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ढंकरी चिकनी रेल की पटरी पर पांव साध-साधकर चलने की कोशिश करने लगा.

तभी ट्रेन के इंजन की सीटी सुनाई पड़ी.

"अबे रेलगाड़ी आ रही है रे." किसी ने आवाज दी.

"यही चिल्ला रही है ससुरी, ये मालगाड़ी." हरी ने ललकारकर उत्साह से कहा.

"चल खिसक. अरे खिसक." मालगाड़ी के साथ-साथ चल रहे कुछ लोग बेजान खड़ी मालगाड़ी को उकसाने का मजा लेने लगे.

सिर्फ एक सीटी की आवाज से उन लोगों की नीरस और उबाऊ यात्रा में एक किस्म की जान पड़ गई.

"अबे धक्का दे धक्का." किसी ने अंधेरे को चीरकर आगे आते हुए आवाज दी.

जो लोग मालगाड़ी से सटे हुए चल रहे थे वे सचमुच ही उसे धक्का देने लगे. "लगा दे जोर भैया."

लोगों ने नारा लगाया..."जोर लगा के हइसा!"

वे लोग अपनी-अपनी पोटलियां संभालकर ट्रेन को धकेलने के लिए जोर लगाने लगे. उनकी ताल पर और लोगों ने भी जोर लगाना शुरू कर दिया.

"धत्तेरे की." बीच से दो-तीन निराश हुए लोगों ने डिब्बे पर घूंसे पटक दिए.

"अबे अड़ियल है. हूला दे हूला." किसी ने आवाज देकर अपने डंडे से डिब्बे को पीटा. डिब्बे के लोहे से बड़ी बेहूदा आवाज उभर कर अंधेरे में गूंज गई.

डिब्बे के लोहे से उठी उस आवाज के साथ ही कई लोगों का तीखा चीत्कार उठा.

एक क्षण ठिठककर लोगों ने वह चीत्कार सुना फिर उन्हें लगा धुंध और अंधेरे में आगे वाले लोगों ने भी शायद मालगाड़ी धकेलने का खेल शुरू कर दिया है. उन्होंने लपककर मालगाड़ी धकेलते हुए फिर नारा लगाया..."ओ भैया जोर लगा के..."

नारा पूरा नहीं हुआ. पलक झपकते अंधेरे को रौंदकर शोर मचाता हुआ एक काला साया पागलों की तरह चीखता आया और जब तक कोई कुछ समझ पाए पटरी पर खड़े लोगों के चीथड़े उड़ाता हुआ आगे निकल गया.

वह सिर्फ एक इंजन था. उसके पीछे गाड़ी नहीं थी. इंजन चलाने वाले को दुर्घटना का पता लग गया था लेकिन जोर-जोर से सीटी बजाने के अलावा और कुछ कर पाना उसके बस में नहीं था.

इंजन से सहसा कितने और कौन लोग कुचले यह उस अंधेरे में जल्दी कोई नहीं जान पाया लेकिन बचे हुए लोगों को भी यह एहसास तुरंत हो गया कि वहां भारी दुर्घटना हो गई है. लगभग एक साथ वे सभी चीखे. लगातार चीखते रहे. तब तक चीखते रहे जब तक उनके गले भर्रा नहीं गए.

स्टेशन वहां से थोड़ी दूर था. लोगों का वह चीत्कार स्टेशन पर समझ में किसी को नहीं आया. कई लोगों को लगा मेले से लौटते लोगों का जयकारा है. वे व्यस्त हो गए.

लंबे अंतराल के बाद और वह भी टूट-टूटकर दुर्घटना की खबर स्टेशन तक पहुंची. एक सिपाही और लालटेनों के साथ दो खलासी साथ लेकर सहायक स्टेशन मास्टर धुंध को धकियाता हुआ जब वहां पहुंचा तो एक क्षण के लिए समझ नहीं पाया कि वह कहां पहुंच गया है.

अपने परिचितों के नाम लेकर चीखते रोते लोगों का हुजूम ट्रेन की पटरियों पर जैसे छीना-झपटी-सी कर रहा था. अंधेरे और पटरियों पर टूटती भीड़ में दुर्घटना को समझ पाना आसान नहीं था.

"अरे क्या हुआ भाई?" थोड़ी ऊंची आवाज में पूछता हुआ सहायक स्टेशन मास्टर भीड़ की तरफ बढ़ा. तभी उसका पैर किसी मुलायम-सी चीज पर पड़ा. उसे लगा पैरों के नीचे कोई असाधारण चीज आ गई है. दो कदम आगे निकल जाने के बावजूद वह पीछे घूमा और खलासी से बोला, "देखो तो क्या था यहां रे."

खलासी ने लालटेन नीचे पटरियों की तरफ घुमाई. पटरियों के बीचोंबीच पत्थर के टुकड़ों पर किसी बच्चे का कलाई के पास से कटा हुआ हाथ पड़ा था. उसमें खून कहीं नहीं था. लग रहा था जैसे किसी जादूगर ने रहस्यमय जादू से हाथ बनाकर वहां डाल दिया हो. लेकिन हाथ के पास ही पटरियों से सटा जो चीथड़ों के ढेर जैसा था उससे छितराया खून बिल्कुल ताजा था. लाश के इतने वीभत्स दृश्य को स्टेशन मास्टर इस तरह घूरता रहा जैसे कुछ पहचानने की कोशिश कर रहा हो. देखते ही देखते उसके चेहरे पर पसीना आया, जबड़ों में तनाव पैदा हुआ और उसे उल्टी हो आई. वह किसी बीमार की तरह खड़े-खड़े ही डगमगाने लगा.

सिपाही अपनी टार्च इधर-उधर लहराता हुआ ऊंची आवाज में बोला, "यहां तो सत्यानास हो गया लगता है."

उत्तर पाने या स्टेशन मास्टर की हालत जानने के लिए सिपाही रुका नहीं. टार्च की रोशनी से धुंध को झाड़ियों की तरह काटता हुआ वह पटरियों के किनारे-किनारे आगे बढ़ता गया.

पटरियों पर और उसके आसपास आगे और ज्यादा खून फैला हुआ था. परिचितों को खोजते लोगों के पैरों के नीचे लोगों के कटे हुए हिस्से इस तरह बिखरे दिखाई दे रहे थे जैसे किसी ने मशीन से काटकर उन्हें उछाल दिया हो.

टार्च की उसी रोशनी में पटरियों के बीचोंबीच निश्चेष्ट पड़ी छल्ली को हरी ने पहचाना.

"अरे भैया, अरे ओ." हरी ने टार्चवाले को रोकना चाहा. वह चाहता था रोशनी वहां थोड़ी देर और ठहरे और वह देख सके कि छल्ली के साथ क्या कुछ घटा है. सिपाही को कुछ भी सुनने की इच्छा नहीं थी. वह टार्च इधर-उधर फेंकता हुआ सिर्फ आगे बढ़ता चला जा रहा था.

टार्च जाने के बाद अंधेरा पहले से भी ज्यादा गहरा हो गया. हरी ने छल्ली को हिलाया. पहले धीरे से फिर जोर से. उसमें हरकत नहीं हुई. हरी के हाथ में कुछ चिकना गीला-सा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिपट गया. अब हरी ने गला फाड़कर चीखते हुए उसे हिलाया, "अरे छल्ली रे."

उसके आसपास हर कोई पागलों की तरह चीखे जा रहा था. हरी जानता था कि ऐसी हालत में किसी दूसरे से मदद की कोई अपेक्षा नहीं की जा सकती.

लोगों के शोर और डरावनी चीखों की वजह से उस भारी और ठोस अंधेरे में एक दहशत पैदा हो गई थी. हरी घबराहट में बारबार छल्ली को हिलाने की कोशिश कर रहा था. रेल के इंजन की एक धुंधली आकृति-सी उसने देखी थी. भाप की इतनी तीखी आवाज न हुई होती तो शायद वह जान भी न पाता कि वहां से क्या गुजर गया. उस इंजन से बहुत से लोग मरे या जख्मी हुए हैं यह उसने अनुमान लगा लिया. छल्ली पटरियों के बीचों-बीच पड़ी थी. इंजन से वह कटी नहीं है यह विश्वास करने के लिए उसने अंधेरे में उसके शरीर को टटोला.

पहली बार टटोलने पर वह खासा संतुष्ट हुआ कि छल्ली का शरीर सही सलामत था. जाने क्यों उसने दुबारा अपने को आश्वस्त करना चाहा. थोड़ी सावधानी से उसने इस बार उसका सारा शरीर टटोला. हाथ अभी घुटने के नीचे पहुंचा ही था कि उसे एक जबर्दस्त धक्का लगा. देर तक वहां दुबारा हाथ ले जाने का साहस नहीं हुआ. पिंडली के ऊपर मांस से बाहर एक मोटी नोंकदार मेख जैसी लगी हुई थी. मगर वह मेख नहीं थी. टखने की हड्डी टूटकर पेशियों को फाड़ती हुई बाहर निकल आयी थी.

हरी ने बौखलाकर नाहक ही इधर-उधर किसी मदद के लिए देखा फिर खुद ही किसी तरह छल्ली के बेहोश शरीर को उठाकर पटरियों के दूसरी तरफ उतर गया.

टार्चवाला सिपाही दुबारा उसी तरफ वापस आया. वापसी में उसने टार्च जला जरूर रखी थी लेकिन देख सामने रहा था, नीचे नहीं. वह कुछ इस तरह चल रहा था जैसे बहुत ज्यादा मेहनत करके लौटा हो और पांव घसीटने की ताकत भी नहीं रह गयी हो.

सहायक स्टेशन मास्टर अपने कमरे में आया और किनारे पड़ी बेंच पर लगभग गिरकर चित लेट गया.

"अबे पानी ला जल्दी से." साथ आये खलासी ने लालटेन मेज पर रखकर दूसरे खलासी से कहा.

दूसरा खलासी पानी लाने भागा. स्टेशन के दो तीन और कर्मचारी इस बीच वहां आ गये, "क्या हो गया बाबू को?"

स्टेशन मास्टर हल्के से खांसने की कोशिश करने लगा. फिर उसके पेट पर झटका-सा उभरा. वह तेजी से बेंच से छटक गया. उसे फिर उल्टी हुई. खलासी पानी ले आया था.

"तबियत खराब हो गई क्या?" कर्मचारी ने फिर पूछा.

खलासी स्टेशन मास्टर का मुंह धुलाता हुआ बोला, "अरे बाबू, देखते नहीं बनता. छाती फट जाय देख कर. सत्यानाश हो गया है."

"मगर हुआ क्या?" दूसरे बाबू ने पूछा.

"ऐक्सीडेंट. ऐक्सीडेंट." पहला खलासी स्टेशन मास्टर का कोट उतारने लगा.

पाठकों की अदालत में

भारतीय कथा–साहित्य के ताजा आयाम पढ़िए

सारिका सर्वभाषा कहानी प्रतियोगिता विशेषांक

हजारों कहानियों और लघुकथाओं में से चुनी गयी विशिष्ट कहानियां और लघुकथाएं

सारिका

1 जून, 1984 अपने यहां के विक्रेता को आज ही सचेत कर दें

"ऐक्सीडेंट? किस गाड़ी का?"

खलासी ने इस सवाल का जबाव नहीं दिया. वह स्टेशन मास्टर का कोट उतारता रहा.

बाबू खीझ गया, "अबे बताता क्यों नहीं किस गाड़ी का ऐक्सीडेंट हुआ है?"

"गाड़ी का क्या, वहां खुद देख आओ. कुहराम मचा हुआ है." दूसरे खलासी ने कहा और फर्श साफ करनेवाले को आवाज देता हुआ बाहर चला गया.

स्टेशन पर खबर जल्दी ही फैल गई. लोग जाने कहां-कहां से निकलकर दुर्घटना वाली जगह की तरफ दौड़ने लगे.

जिस वक्त वहां अस्पताल की मदद पहुंची, दिन चढ़ आया था और कुहरा फूटकर इस तरह ऊपर उठ रहा था जैसे आग लगकर बुझ चुकी हो और सुलगते अंगारों से धुआं उठ रहा हो.

घायलों और लाशों में से बहुत थोड़ी ही ऐसी थीं जिन्हें समूचा उठाया जा सकता था. शरीर के कटे-बिखरे हिस्सों को समेटना खासा परेशान करनेवाला काम था.

अस्पताल वालों के लाशें उठाने के काम में जुटते ही वहां लोगों का चीत्कार फिर सुनाई देने लगा. लाशों से लिपटे हुए लोग एक बार फिर खुलकर रो लेना चाहते थे.

गाड़ियों में इतनी जगह नहीं थी कि घायलों और लाशों के अलावा उनके साथी संबंधी भी बैठ सकें. गाड़ियां रवाना होने के बाद एक बार और ऊंची आवाज में रोकर पुलिस के सिपाहियों के साथ लोगों का काफिला शहर की तरफ चल दिया.

थोड़ी दूर निकल जाने के बाद हरी को कंधे पर लटकी चने की पोटली याद आई. वह वहां नहीं थी. दुर्घटना इतनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अप्रत्याशित थी कि उस बीच चने की पोटली का खयाल ही नहीं आया. वहां बेहद अंधेरा भी था. पोटली कहां गिरी होगी यह जानना भी मुश्किल ही था. जहां पर था वहां मालगाड़ी के डिब्बे थे. चने वापस ले आये?

उसे इस खयाल पर थोड़ी-सी शर्मिंदगी भी महसूस हुई. छल्ली को इस हालत में छोड़कर जाना उसे गलत लगा.

लेकिन थोड़ा चलने के बाद उसने सोचा चने की वह पोटली खोज लेने में हर्ज नहीं है. आखिर छल्ली अब अस्पताल तो जा ही रही है. वहां उसे रहना पड़ सकता है. चने खाने के काम तो आ ही सकते हैं.

हरी पलटकर वापस चल दिया. उसके इस तरह लौटने पर किसी ने कोई ध्यान नहीं दिया.

पूरा स्टेशन पार करने के बाद वह अनुमान से वहां आया जहां उसके अनुसार मालगाड़ी होनी चाहिए थी. वह वहां नहीं थी. जाने कब वह वहां से चली गयी थी. वह बौखला गया. उस मालगाड़ी के वहां न होने से वह समूचा स्टेशन अजनबी हो गया. कुहरा छट गया था और पटरियों के दूर तक बिछे जाल के आसपास मैली रजाइयों में लिपटे दरख्त मौज में खड़े थे.

गनीमत है कि दुर्घटना की जगह उसे मिल गई. वह स्टेशन के दूसरी तरफ थी. उधर अब जबर्दस्त भीड़ हो गई थी और पुलिसवाले डंडे हिला-हिलाकर लोगों को दूर रखने की कोशिश कर रहे थे.

भीड़ में घुसने में उसे परेशानी नहीं हुई. उसने सोचा एक सिरे से खोजना शुरू करेगा. अंगोछे में बंधी पोटली उसने काफी दूर से ही पहचान ली.

भीड़ से निकलकर दो सिपाहियों से कतराता हुआ वह पोटली की तरफ बढ़ा. तभी दो-तीन सिपाही एक साथ चिल्लाए, "एई किधर जाता है?"

"जी हुजूर." वह ठिठककर घूमा.

"अबे भाग उधर से." सिपाहियों ने लाठी हिलाते हुए उसे ललकारा.

"वो. . . वो. . ."

हरी ने कहना चाहा कि वह अपनी पोटली उठाने आया है लेकिन सिपाहियों की आक्रामकता से घबराकर वह पीछे हट आया.

अस्पताल से वापस घर तक की उसकी यात्रा काफी सुखद थी. बड़ी-बड़ी मोटरों में अस्पताल से छुट्टी पाए मरीजों के साथ उनके संबंधियों को भी घर लौटने की छूट मिल गई थी. इस यात्रा के लिए उसे पैसे भी नहीं देने पड़े थे.

छल्ली बहुत तकलीफ महसूस कर रही थी लेकिन वह अब बोल सकती थी. उठकर बैठ सकती थी. सहारे से थोड़ा-सा चल भी सकती थी. हरी ने अस्पताल से मिली गोलियां रख दीं और सबसे पहले उसे फिटकरी पिलाई थी. इसके बाद अपनी समूची परंपरा याद करते हुए वे इलाज शुरू कर दिए थे जिनसे जीने की उम्मीद बंधती थी और मर जाने पर नियति याद आया करती थी.

दो रोज छल्ली कुछ ठीक रही फिर उसके जख्मों में बेतरह दर्द शुरू हो गया. बीच-बीच में उसे इतना तेज बुखार आ जाता था कि वह लगभग बेहोश हो जाती थी.

चाह कर भी हरी ने अस्पताल से मिली दवाएं नहीं दी थीं. उनसे बड़ी गर्मी हो जाती है शरीर में, उसने सुन रखा था. विलायती दवाइयों के लिए गिजा चाहिए. अंगूर, सेव, अनार, संतरे और मक्खन तो होना ही चाहिए. इसलिए सबसे अच्छा है तुलसी की पत्ती उबालकर पीते रहो और कुकरौंधे का इस्तेमाल करते जाओ.

जिस दिन गांव में मुख्यमंत्रीजी मृतकों के परिवारों से मिलने आये छल्ली बुखार में बेहोश पड़ी थी वरना वह उसे भी ले जाता. सांवलदास की कलाई टूट गई थी. वह मिलने पहुंचा तो मुख्यमंत्रीजी ने अपनी माला उसे पहना दी थी. उसके साथ फोटो भी खिंचवाई थी. नोहरी भी हरी के साथ उस दुर्घटना में था. उसकी बाएं हाथ की छोटी उंगली टूट गई थी. उसमें मोटे कपड़े का गट्ठर-सा लपेटे नोहरी ने भी बड़ी खुशी से फोटो खिंचाया था.

छल्ली उसी दिन बहुत ज्यादा बीमार हो गई थी. बहुत देर हरी उसके पास बैठा रहा. उसे धीरे-धीरे आवाजें भी दीं. सिर्फ एक बार बहुत नामालूम ढंग से वह कराही भर थी, बस. हरी बहुत ज्यादा उदास हो गया था. किसी हद तक उसे लगा था शायद वह बचेगी नहीं. गांव का चौकीदार उसे बुला गया था. उसे भी मुख्यमंत्री के सामने हाजिर होना था. बहुत बेमन, लगभग टूटा हुआ वह वहां पहुंचा तो फोटो खींचने की तैयारी हो रही थी. हरी ने नोहरी को अपनी टूटी उंगली झंडी की तरह ऊंची करके विज्ञापित करते देखा. वह हतोत्साहित होकर एक ओर हो गया.

प्रधान ने उसे डांटकर आगे आने को ललकारा और पास खड़े बड़े हाकिम को बताया कि हरी की बीवी बहुत जख्मी है.

"छल्ली को क्यों नहीं लाया बे?" किसी दूसरे ने उसे डांटा. हरी ने मुनमुनाकर कुछ कहा.

लोग फोटो खिचाने के लिए इकट्ठा होने लगे.

"अबे चल तू ही आ." प्रधान ने उसे ललकारा.

बहुत हारा हुआ वह भीड़ में शामिल हुआ और फिर लोगों की नजर बचाकर पीछे की तरफ दुबक गया, इस तरह कि फोटो खिंचे तो वह दिखाई ही न दे. उसकी इस हरकत पर किसी ने ध्यान नहीं दिया. इस बात पर वह और ज्यादा उदास हो गया.

वहीं फोटो खिंचने के बाद यह घोषणा हुई थी कि सरकार ने मृतकों के परिवार को पांच-पांच हजार रुपये नकद देने का फैसला किया है.

मरनेवालों को. हरी का मुंह यकायक कड़वा हो गया. उसने देखा अपनी उंगली विज्ञापित करते हुए नोहरी एक सिपाही से पूछने लगा था, "भैया, जिन्हें चोट लगी है उनको सरकार क्या देगी?"

"धतूरा देगी. किनारे हट." सिपाही ने घुड़का.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

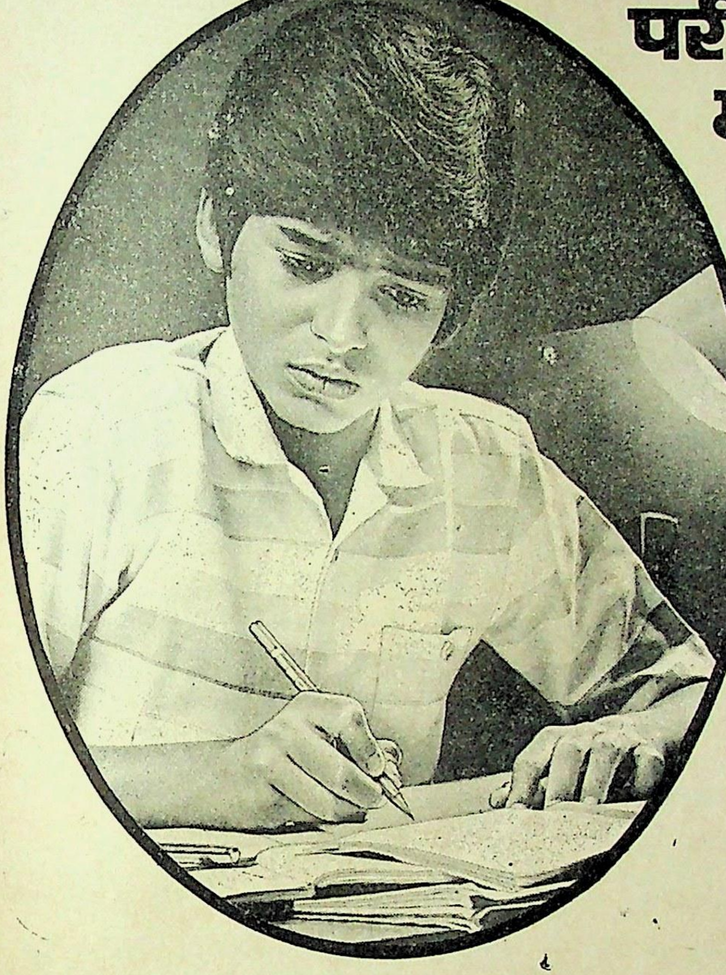

परीक्षा के दिन? मन लगाकर पढ़ने के दिन...

चुस्त-तंदुरुस्त रहने के दिन, कॉम्प्लान® के दिन.

सिर्फ़ कॉम्प्लान® में ही २३ अत्यावश्यक पोषक तत्व हैं जो इसको अतिरिक्त पोषण देते हैं.

बच्चों का चुस्त-तंदुरुस्त रहना बहुत ही ज़रूरी है. खासकर तब, जब वे परीक्षा के लिए पढ़ाई में जुटे होते हैं. इसीलिए माताएं जानती हैं कि परीक्षा के दिन याने **कॉम्प्लान** के दिन होते हैं.

शरीर के विकास में जो पोषक तत्व सीधे सहायक होते हैं वे प्रोटीन हैं. **कॉम्प्लान** उन्हें सर्वोत्तम प्रोटीन के साथ-साथ २२ अन्य अत्यावश्यक पोषक तत्व भी देता है, जिनकी बच्चों को बढ़ती उम्र में ज़रूरत रहती है. ध्यान रहे **कॉम्प्लान** ही वह नियोजित आहार है जिसकी डॉक्टर ज़्यादातर सिफ़ारिश करते हैं.

कॉम्प्लान चॉकलेट, केसर-इलायची और स्ट्रॉबेरी के स्वादभरे जायकों में-तथा प्लेन भी मिलता है.

प्रोटीन, फैट, कार्बोहाइड्रेट, कैल्सियम, फॉस्फोरस, सोडियम, क्लोराइड (सी एल के रूप में), पोटासियम, आयरन, आयोडिन, विटामिन ए, विटामिन बी१, रिबोफ्लेविन, निकोटिमाइड, कैल्सियम पैन्टोथेनेट, कॉलिन, पायरिडॉक्सीन (बी ६), विटामिन १२, फॉलिक एसिड, विटामिन सी, विटामिन डी, विटामिन ई, विटामिन के

दूध मिलाने की ज़रूरत नहीं

कॉम्प्लान® — परिपूर्ण नियोजित आहार

GK&E.B84.GLC.11 Hin.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शीघ्र प्रकाश्य

दस हजार कहानियां में से चुनी गयी पुरस्कृत कहानियों और लघुकथाओं का जीवंत दस्तावेज

सर्वभाषा कहानी प्रतियोगिता विशेषांक

सारिका

1 जून, 1984

अपनी-अपनी प्रति अभी से सुरक्षित करवा लें.

भीड़ से चुपचाप बाहर आकर हरी कुकरौंधे की खोज में चल पड़ा. छल्ली की हालत जल्दी सुधरेगी नहीं. घावों पर कुकरौंधे का रस बार-बार लगाना होगा.

उन बेहद हरे, हल्की-हल्की गंधवाले नरम पत्तों की गड्डी लिए हुए वापस आया तो छल्ली कराह रही थी और करवट बदलने की कोशिश कर रही थी.

"छल्ली कैसी तबियत है रे?" पत्तों की गड्डी जमीन पर रखकर हरी उसके सिरहाने बैठ गया.

जवाब में छल्ली शायद कराही या उसने कुछ कहने की कोशिश की. बेचैनी, दर्द और दुख हरी के कंठ में बलगम की तरह आ लिपटा. उसने नाहक ही कुछ घूंटा. उसने देखा छल्ली ने करवट बदलने की एक और कोशिश की और सहसा उसका चेहरा राख की तरह सफेद हो गया और दांत इस बुरी तरह भिंच गये कि आंखों से लेकर गर्दन तक गहरी शिकन पड़ गई. लगा शरीर ऐंठकर टूट जायगा. देखते-देखते मिंची हुई आंखों की कोरों से आंसू निकलकर कान पर लुढ़क गये.

"छल्ली, बहुत दर्द है? कहां दर्द है?" हरी ने और झुककर पूछा.

छल्ली कुछ नहीं बोली. हरी ने फिर कहा, "मैं कुकरौंधा ले आया हूं. दिन में कई बार गर्म-गर्म निचोड़ दूंगा तो जल्दी ठीक हो जायगी, दर्द भी दबेगा."

हिम्मत करके उसने छल्ली के कंधे पर लिपटी पट्टी खोलनी शुरू की. छल्ली सिर्फ दांत ही भींचती रही, चीखी नहीं. शायद चीखने की शक्ति बची ही नहीं थी. पट्टी का आखिरी सिरा रुई सहित जख्म पर बहुत बुरी तरह चिपक गया था. उसे आहिस्ता-आहिस्ता छुड़ाने की कोशिश में दर्द इतना बढ़ गया कि छल्ली छटपटाने लगी.

हरी रुक गया. थोड़ी देर शायद दर्द थमने का इंतजार करता रहा, उसके बाद मन मजबूत करके उसने पट्टी खींच ली. पट्टी उखड़ने को ऐसी आवाज हुई जैसे खाल नोंचकर खींच ली गई हो. शायद छल्ली को जबर्दस्त पीड़ा हुई होगी क्योंकि वह बिस्तर पर लगभग उछली और छटपटाने लगी. हरी ने धीरे से सहारा देकर उसे सांत्वना देनी चाही. तभी उसने देखा खुल गए जख्म से तेजी से खून नीचे टपकने लगा. वह घबरा गया. लगभग जड़ित, रक्त के उस घातक प्रवाह को देखता रहा. अनुमान से ही उसने जान लिया कि अगर रक्त बहना रोका नहीं गया तो आखिरी बूंद तक वह बहता ही जायेगा.

छल्ली पर फिर बेहोशी की चादर छा गई. रक्त उसी गति से बहता रहा.

छल्ली अब नहीं बचेगी. खून बहना रुका नहीं तो कोई नहीं बचा सकेगा. छल्ली मर जायगी. एक उलझन भरी बेचैनी हरी ने महसूस की—बल्कि उस मृत्यु की कल्पना में एक वीभत्स ग्लानि उसे महसूस हुई. जख्म की ओर उसने हाथ की पट्टी बढ़ाई और फिर जैसे वह बेतरह भयभीत हो गया हो इस तरह कांपता हुआ उठा, घर से बाहर आया और एक तरफ दौड़ने लगा.

बहुत देर तक और पूरी शक्ति भर वह दौड़ता रहा. गांव पीछे छूट गया. खेत निकल गये. फिर उजाड़ मैदान भी पीछे छूट गया.

कटीली झाड़ियों और बारिश से कटी जमीन की दरारों वाले इलाके तक पहुंचते-पहुंचते वह थककर लड़खड़ाने लगा. वह तब तक भागता ही रहा जब तक उसके पैरों ने उसका साथ देना एकदम बंद नहीं कर दिया. सूरज बिल्कुल उतर आया था और रात की धुंध बहुत पहले से ही घुमड़ने लगी थी. अब क्या समय रहते वापस लौटा जा सकेगा? वह जहां लड़खड़ाकर गिरा वहां सिरसे की अकड़ी हुई जड़ें इस तरह उभरी दीख रही थीं जैसे किसी मृत्यु की घाटी में बहुत से सांप सूखकर जम गए हों.

बुरी तरह हांफते हुए उसने पीछे पलटकर देखा. गांव बहुत दूर, बहुत पीछे छूट गया था. उसके हाथ में खून लगी पट्टी अभी उलझी थी.

छल्ली?... अब? अब क्या वह कुछ कर पाएगा?... हरी हाथ की मैली पट्टी घूरता रहा. उसे ताज्जुब हुआ कि उसे रोना क्यों नहीं आ रहा. और तभी जैसे उसकी छाती फोड़कर रुलाई उभरी. आसमान पर सूखे रक्त की शिराओं की तरह छपे कंकाल दरख्तों को घूरता हुआ वह जोर-जोर से रोने लगा. □

● सी-1200, इंदिरानगर, लखनऊ.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

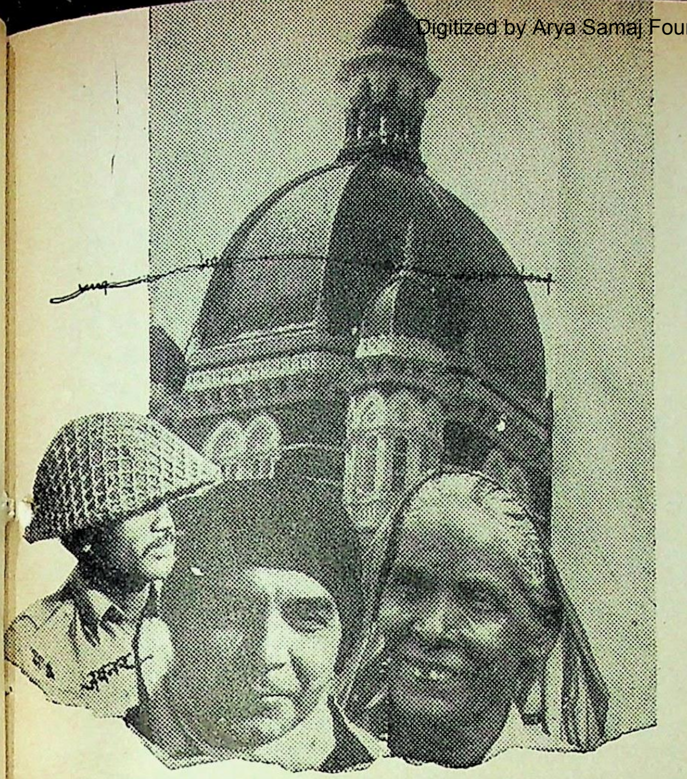

युवा-लेखन कहानी प्रतियोगिता

■ पुरस्कृत कहानी

ठिकाने

• शंकर

रात आधे से ज्यादा गुजर चुकी थी.

पुलिस की गश्तियां ठंडी पड़ गयी थीं. गलियों से पुलिस की जीप को गुजरे घंटे भर से ऊपर हो गया था. कोयलाडुंगरी और मुस्लिम लाईन, दोनों गलियां जिस नुक्कड़ पर मिलती हैं, वहां मुर्दानगी घिरी थी. गलियों में झन्न-झन्न कर रही चुप्पी थी.

शहर में वारदातें दोपहर में शुरू हुई थीं. वारदातों के शुरू होते ही शहर में कर्फ्यू लग गया था. लोगों को हिदायतें दी गयी थीं कि कोई घर से बाहर न निकले. जो वारदातों में शामिल पाये जायेंगे, उन्हें गोली मार दी जायेगी, लेकिन तमाम एहतियातों के बावजूद दंगा फैलता गया था. अब तक शहर के सभी हिस्से दंगे के चपेट में आ गये थे. लूटपाट और आगजनी की घटनाएं अपनी अंतिम हद पर थीं.

बड़ी-बड़ी वारदातें एक छोटी-सी सड़क को लेकर शुरू हुई थीं. अब तक कई तरफ घरों और दूकानों में आग लग चुकी थी. छोटे-छोटे बच्चों से भरी एक स्कूल-बस जलायी जा चुकी थी. सब्जी बेचनेवालों के शेड जलाये जा चुके थे. फुटपाथ पर खड़ा एक ठेलावाला भाग नहीं पाया था और मौत के घाट उतारा गया था. दूध बेचकर लौट रहे बूढ़े ग्वाले को उसी की साइकिल में बांधकर जलाया गया था. अस्पताल की तरफ भागी जा रही एक गर्भवती औरत हवस का शिकार बनी थी. पाली खत्म होने पर घर लौट रहा एक मजदूर जबरदस्ती जलती हुई दूकान में फेंक दिया गया था. एक रिक्शेवाले ने रिक्शा के पीछे छिपने की कोशिश की थी किंतु इस प्रक्रिया में वह देख लिया गया था, उसे सड़क पर खींचा गया था और उसके दोनों हाथ अलग कर दिये गये थे.

इस इलाके में पहली घटना शाम के झिटपुटे में घटी थी. उस वक्त शमशुल की बीवी सुरिंदर के घर से गोइंठे पर आग का अंगारा लेकर निकली थी. तभी कोई टेंपू उसको किनारे धकेलते हुए भागा था, सामने नुक्कड़ पर मुराद जमीन पर लुढ़का गिर पड़ा था. इत्तफाक था कि बम उसकी बांह को सिर्फ छूते हुए निकला था. गुमटी के परखचे उड़ गये थे. सिगरेट, बीड़ी के बंडल, लेमनचूस, टाफियां, बिस्कुट, साबुन, छोटे-छोटे खिलौने, शीशे के बर्तन आदि बेतरतीब बिखरे पड़े थे. यह सब मिनटों में हुआ था और जिस वक्त शमशुल की बीवी सब कुछ समझ पायी थी, उस वक्त भागते जा रहे टेंपू की सिर्फ घों-घों आवाज बची थी.

अभी दो-चार मिनट भी नहीं गुजरे थे कि बम फटने की दूसरी आवाज गूंजी थी. यह आवाज कोयलाडुंगरी में शरणी सिंह के ढाबे से उठी थी.

अंधेरा घिरते-घिरते पुलिस की गश्त इस इलाके में भी शुरू हो गयी थी. पुलिस की जीप जिस समय पहली गश्त के लिए नुक्कड़ पर पहुंची, समय तक मुराद की गुमटी हट चुकी थी. पुलिस वाले बड़बड़ाते हुए गलियों में दाखिल हुए थे, बहुत खतरनाक तरीके से बसा हुआ है यह इलाका. एक गली में सिर्फ हिंदू-सिक्ख, दूसरी में सिर्फ मुसलमान. गलियां इस तरह सटकर बसी हुई हैं कि पता नहीं कब अमन चैन भंग हो जाये. . .सुनो, सुनो मुहल्लेवालो, हम पूरी तरह से चौकस हैं. मुहल्ले में कोई भी हरकत नहीं करेगा. सुनो-सुनो मुहल्लेवालो. . .!

आठ बजते-बजते दोनों गलियां सुनसान हो गयी थीं. यह कामगारों और छोटे मोटे धंधों पर जीने वाले लोगों का मुहल्ला था. गलियों में छोटे-छोटे कच्चे-पक्के मकान थे जिनके दरवाजे चिपककर बंद हो गये थे. रोशनदानों पर रोशनियां मद्धिम तेज होते हुए हिलती रही थीं. आज शरणी सिंह के ढाबे पर तेजू, सुरेंदर, अशफाक, रजा, सुमिरन सिंह की न तो जुटान हो पायी थी और न ही शरणी सिंह का यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तकियाकलाम शुरू हो पाया था. . .'तो सुनो बादशाओ, मैं कोडरमा के जंगल से ट्रक लेकर गुजर रहा था. . .न' अमूमन यह जुटान काफी रात गये तक चलती थी.

साढ़े नौ-दस बजे के आसपास पुलिसवाले बाजार की तरफ से किसी घायल नौजवान को टांगते हुए ले आये थे और कोयलाडुंगरी में एक दरवाजे पर छोड़कर वापस लौट गये थे.

भम्म. . .अचानक शहर के पश्चिमी हिस्से से कोई भारी आवाज उठी. दोनों गलियों में फैला सन्नाटा एकबारगी टूट गया. आवाज के साथ कुछ रोशनी भी उठी थी और ऊपर आसमान की तरफ उठती चली गयी थी. यह शायद बम फूटने की आवाज थी. मुमकिन है, कोई बिल्डिंग उड़ गयी हो, कोई बाजार उजड़ गया हो या कोई बस्ती राख हो गयी हो.

थोड़ा वक्त गुजरा तो सन्नाटा फिर घिर आया.

कोयलाडुंगरी गली की तरफ से बढ़ी चली आ रही कोई परछाई डरी-सहमी हुई हालत में नुक्कड़ के करीब आकर एकाएक रुक गयी. उसने मुड़-मुड़कर पीछे, अगल-बगल देखा. निश्चित रूप से उसे इत्मीनान कर लेने की जरूरत महसूस होती होगी. वह अंधेरे में एक बुत की तरह खड़ी थी.

तभी बगल की गली से परछाई की शक्ल में कोई दूसरा धीरे-धीरे चौकन्ना होकर आगे बढ़ता नजर आया. पहली परछाई डरकर रुक गयी. कहीं कोई पीछा तो नहीं कर रहा हैं. अगर कोई पीछा कर रहा होगा तो उसके हाथ में तेज हथियार होगा. वह पास आयेगा. फिर धीरे से हथियार उसके जिस्म में पिरो देगा. फिर. . .फिर. . .पहली परछाई एकाएक रुक गयी.

बगल की गली से आ रहा आदमी आगे बढ़ जाये या लौट जाये तो वह वापस पीछे भागे. . .या आगे बढ़े. घबड़ाहट में पहली परछाई डरकर नाली के पास दुबक गयी और बगल की गली की तरफ देखने लगी. लेकिन यह क्या, दूसरी परछाई ने पहली परछाई को देख लिया था. वह किसी की सीढ़ी के पास दुबक रही थी. तब वह आगे क्यों नहीं बढ़ी, छिप क्यों गयी. उसने ऐसा डरकर किया या घात के लिए?

अचानक नुक्कड़ के पास रोशनी का बहुत बड़ा घेरा पसर गया. खर्र, सों. ..सों. . .की आवाज उभरने लगी. आवाज धीरे-धीरे तेज होती गयी. यह पुलिस की जीप थी. पुलिस वाले गश्त पर निकले थे.

रोशनी दोनों गलियों में फिसल गयी. पहली परछाई ने सिर को झुकाकर नाली की पाटी के भीतर करना चाहा तो उसे दिखाई पड़ा, दूसरी परछाई ने भी खुद को सीढ़ी से ढक लेने की कोशिश की. जीप खर्र. . .सों. . .सों. . .करके आगे बढ़ गयी और नुक्कड़ पर अंधेरा फिर पसर गया.

पहली परछाई वापस गली में आने की बजाय डरकर मकानों के पिछवाड़े चली गयी और पीछे लौटने की बजाय नालियां, कीचड़, घूरा, कूड़ा-कचरा फांदते हुए मकानों के पिछवाड़े से ही आगे बढ़ने लगी. उसे इत्मीनान हुआ, मुस्लिम लाईन की तरफ से आ रही परछाई किसी को मौजूद न पाकर वापस लौट गयी होगी. अब वह गली की सड़क पर आ जाये. जैसे ही मकानों की पांत खतम हुई और मस्जिद एरिया का मैदान के आने को हुआ, वह पिछवाड़े से निकलकर सड़क पर आने के लिए बढ़ गयी.

सड़क पर आकर पहली परछाई एकाएक सिहर गयी. यह क्या, दूसरी परछाई भी उल्टी तरफ से मकानों के पिछवाड़े से निकलकर सड़क पर पहुंच रही थी. सड़क से आगे यहां दोनों तरफ मैदान था. इसके बाद मस्जिद. उसके बाद ट्रांसपोर्ट एरिया. दूसरी परछाई ने सड़क पर किसी और को देखा तो वह एकबारगी कांपने लगी. सामने की तरफ भागा नहीं जा सकता था. पीछे की तरफ मुड़कर भागने की कोशिश पर पकड़ लिये जाने की गुंजाइश थी. दोनों परछाइयां अपनी-अपनी जगह पर बुत बन गयीं.

दूसरी परछाई को थोड़ा हिम्मत बांधी और कुछ आगे बढ़ी. उसके मुंह से आवाज निकली, "कौन? गुरमीत. बुआ."

पहली परछाई को भी दूसरी परछाई को पहचानने में वक्त नहीं लगा, "तू. . .जलालुद्दीन."

"हां, हां, मैं जमालु हूं. दोपहर में दूकान बंद करके भागते वक्त मैं अपनी मशीन उठा नहीं सका था. कल वारदातें बढ़ेंगी, बुआ. क्या पता, टेलरिंग बचे, जले कि लुटे. सोचा, रात में ही मौका पाकर मशीन उठाते आऊं." जमालु की आवाज में बहुत बड़ी निश्चिंतता थी. मानो वह बहुत बड़ी मुसीबत से उबर गया हो.

"शाम तक मेरी भैंस नहीं लौटी. शाम को ढूंढ़ने निकली थी तो गश्तवालों ने रोक दिया था. ट्रांसपोर्ट एरिया या बाजार में कहीं पड़ गयी होगी. सुबह हुई तो पुलिस उसे कांजीहाउस दे देगी." दुपट्टा सिर पर करते बुआ कह गयी.

फिर दोनों आगे बढ़ने लगे.

चलते-चलते जमालु बुदबुदाया, "मैं शाम से ही फिक्र में घिरा रहा, बुआ. झपकी आयी थी कि देखा, किसी ने मशीन को उठाकर खौलते हुए खड्डे में डाल दिया है. मैं चिल्लाया हूं तो उसने मुझे अपने लोहे जैसे हाथों से उठाकर खौफनाक हड्डियों के ढेर पर फेंक दिया है. हड्डियां मेरे पेट में धंस गयी हैं. . ."

■ शंकर

जन्म : 1948, शिक्षा : एम.ए.—1972 से 'अब' पत्रिका का संपादन-प्रकाशन. अब तक कुछेक कहानियां प्रकाशित.
संप्रति : बिहार वित्त सेवा में पदाधिकारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होनहार

▣ कुलदीप जैन

"देखो जी, हमारे पास देने को कुछ नहीं है बस सूखी लड़की है."

इस पर लड़के का पिता बोला, "अजी, हमें और क्या चाहिए. . .आपने लड़की दे दी, यही क्या कम है!"

लड़कीवालों में से एक ने स्पष्ट किया, "यों तो शादी में हर आदमी अपनी इज्जत के लिए काफी कुछ खर्च करता फिर भी स्पष्ट करना जरूरी है."

लड़के की मां बाहर खड़ी-खड़ी ये बातें सुन रही थी. उसने पर्दा हटाकर धीरे से इशारा किया तो लड़के का पिता उठ लिया. इसी बीच लड़कीवालों ने जान लिया कि लड़का किसी छोटे-से अखबार में रिपोर्टर था.

जब लड़के का पिता अंदर आया तो लड़कीवालों की तरफ से एक बुजुर्ग बोला, "तो फिर हम पक्की समझें?" लड़के का पिता बोला, "हमारी तरफ से तो बात पक्की है, पर लड़के की भी तो हां चाहिए. अभी पिछली बार एक फैक्टरी वाला आया था, वह लड़के को घर जवाई बनाना चाहता था इसलिए हमने नामंजूर कर दिया. . . एक लाख शादी में लगा रहा था. हां, ये तो बताइए आपकी लड़की कितनी पढ़ी-लिखी है?"

इस पर लड़की के पक्षवाले एक-दूसरे का मुंह देखने लगे. बीच वाले व्यक्ति ने बात संभालते हुए कहा, "देखो जी, हमारे यहां लड़की को ज्यादा पढ़ाना अच्छा नहीं माना जाता. लड़की

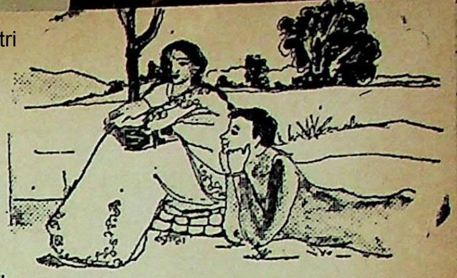

सुशील है, गृह कार्य में दक्ष. . . चाहें तो छानबीन करा लें!"

लड़का इस तरह की बातों से पहले भी कई बार परेशान हो चुका था. वह जान गया था कि उसका पिता दहेज की बात कुछ कहना चाहता है. इस बार भी बात तय नहीं होगी और इन लोगों के चले जाने पर मां कहेगी, 'पता नहीं कैसे-कैसे लोग चले आते हैं. जाहिल गंवार लड़की को मेरे होनहार लड़के के पल्ले बांध रहे थे!' □

● 64/5, शिव मंदिर मार्ग, मौजपुर, दिल्ली-110053

"चलने से पहले मैंने गुरु नानक भगवान की तस्वीर पर माथा टेका कि मेरी भैंस मिल जाये. . ." बुआ की आवाज भरभरायी.

"कीरतन किस तरफ ढूंढ़ने निकला, बुआ?"

बुआ एक बारगी डगमगा गयी. जमालु ने सहारा दिया. दोनों मोड़ पर आकर रुक गये. ट्रांसपोर्ट एरिया शुरू हो गया था.

"बुआ, तू इस तरफ देख. मैं उस तरफ देख लूं. मिल-जुलकर हम जल्दी से ढूंढ़ लें और लौट चलें. क्या पता, गश्त-वाले आ जायें. . ." जमालु गोदाम की तरफ बढ़ गया.

थोड़ी देर में दोनों फिर उसी जगह आ जुटे. भैंस न तो गुरमीत बुआ को मिली थी, न जमालु को. दोनों आगे बढ़ने लगे. अब फर्नीचर लाईन शुरू हो गयी थी.

"जमाल, तू उस टीले की तरफ देख ले. मैं सिल्लियों के बीच ढूंढ़ती हूं. वह इधर ही होगी. जायेगी कहां. . ." बुआ ने जमालु को सुझाया.

जमालु टीले की तरफ चला गया. बुआ सिल्लियों के बीच झुक-झुककर देखती रही. 'आखिर कहां जायेगी. . .' बुआ बुदबुदाती रही. जमालु लौट आया.

"चल, तू दूकान देख ले. उसके बाद एक चक्कर फिर लगा लेंगे." भैंस नहीं मिली थी. अंधेरे में पैरों से अंदाज लेते हुए दोनों टेलरिंग लाइन की तरफ बढ़ गये.

बाजार जला लुटा हुआ था. टेलरिंग लाईन की दूकानें या तो जली हुई थीं या टूटी-फूटी और ध्वस्त थीं. जमालु तेज चलते हुए अपनी दूकान के पास आकर रुका. गुमटी जल चुकी थी. बचा-खुचा ढांचा तिरछा लुढ़का पड़ा था. उसने ढेर को बड़ी मुश्किल से हटाया और मशीन को दोनों हाथों से बाहर खींचा. मशीन के बाहर आते ही वह जड़ हो गया. यह मशीन नहीं थी. मशीन का सिर्फ जला-पिचका ढांचा था. फिर सुबक पड़ा, "मेरे बड़े भाई ने इसके लिए बड़ी मुश्किल से पैसे जुटाकर दिये थे. अब मैं दूसरी मशीन खरीद नहीं सकूंगा, बुआ!"

अचानक बुआ भी सुबक उठी. दबा हुआ दर्द उठा और बुआ को झकझोरता चला गया. पिछले ही साल कीरतन का बाबू उठा था. दम तोड़ने से पहले उसने कहा था, "फिक्र मत कर. भैंस सही सलामत रहे. मेरी जगह कीरतन ले लेगा? आज सब कुछ दांव पर चला गया बुआ का. भैंस शाम को नहीं लौटी थी. और कीरतन . . .? अचानक बुआ सिसकी, "कीरतन की जान आज दंगाइयों ने ले ली. वह गली में घायल पड़ा मिला था. घंटे भर भी नहीं बचा. . .'

बुआ की सिसकियां थमीं तो जमालु उसकी ओर मुखातिब हुआ, "तू यहीं बैठ बुआ. मैं देखकर आया."

जमालु टेलरिंग लाइन के पिछवाड़े निकल गया. उसने सबसे पहले कचरे के ढेर और नाला के आसपास देखा. किसी चीज के हिलने-डुलने का अंदाज नहीं हुआ तो लौट आया. तब उसने गैरेज के पासवाले कुएं में झांका जो कई सालों से बंद था. पानी के सतह पर कोई हरकत नहीं मालूम पड़ी. उसे इत्मीनान हुआ. वह इमली के पेड़ के नीचे कब्र के पास पहुंचा तो वहां कोई चीज दीवार से सटी नजर आयी. उसने हिस्स-हिस्स की तो भैंस उठकर खड़ी हो गयी.

बुआ ने भैंस की गर्दन में बंधी रस्सी पकड़ ली.

जमालु ने मशीन को नीचे घसीट लिया.

"बुआ, मैं मशीन को पीठ पर उठा लेता हूं. तू भैंस की रस्सी मशीन में बांध दे और स्टैंड में थोड़ा हाथ लगाये रखना.' कहते हुए जमालु मशीन उठाने के लिए बैठा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

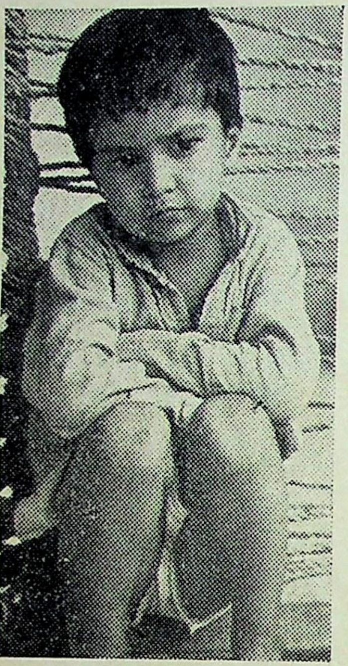

गाईड

▣ पृथ्वीराज अरोड़ा

"सुनो, तुम्हारा लाडला गाईड मांगा रहा है."

"आयी." रसोई से निकलकर, वह पास आकर बोली, "तो ले दो."

"क्या कह रही हो? ले दूं? नयी कक्षाएं तो अभी शुरू हुई हैं! तुम उसी स्कूल की अध्यापिका होकर ऐसा कह रही हो?"

वह मुस्करायी, "हम भी तो गाईड से ही पढ़ाते हैं!"

"क्या?. . . गाईड से पढ़ाती हो? मूल पुस्तकों से नहीं?"

"मेहनत नहीं करना चाहते!" उसने सहजभाव से कहा.

"वेतन किस बात का लेती हो?" वह चिढ़कर बोला.

वह झुंझला गयी, "जानते तो हो कि प्राईवेट स्कूलों में कितनी तनख्वाह मिलती है!"

वह सहज होकर चिंताभाव से बोला, "यह तो मेरे बच्चे के साथ खिलवाड़ है!"

कोई चीज उसे अंतस तक छील गयी, "हां, ऐसा मैंने कई बार महसूस किया है. जब-जब ऐसा महसूस होता है तो मूल पुस्तकों से पढ़ाने लगती हूं मगर फिर. . ."

"फिर क्या होता है?"

"जिस दिन मेरी हथेली पर उजरत के नाम पर पूरे वेतन के बजाय आधे वेतन जितने कागज के कुछ टुकड़े रख दिये जाते हैं तो बदल जाती हूं. . . मूल पुस्तकों से गाईड पर आ जाती हूं. . . गाईड पर. . . !" वह तेज-तेज कदमों से रसोईघर में लौट गयी और पल्लू से आंखें पोंछने लगी. . . ! ▣

● सी-18, विश्वविद्यालय परिसर, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)

"सुन, तू मशीन भैंस की पीठ पर लुढ़का दे और पीछे से हाथ लगाये रख. मैं रस्सी पकड़े चलूंगी." बुआ ने भैंस की पीठ पर हाथ छुलाया. भैंस सीधा खड़ी हो गयी.

बुआ रस्सी पकड़े खड़ी रही. जमालु ने मशीन को आहिस्ता से–भैंस की पीठ पर लुढ़का दिया. फिर पीछे से स्टैंड को हाथ लगाकर रोक लिया. रात के सन्नाटे में भैंस की खुरों की आवाजें उठने लगी खुट-खुट-खुट. दोनों बढ़ने लगे.

वे फर्नीचर लाइन तक गुमसुम आये जैसे किसी बहुत बड़ी फिक्र ने दोनों को अपने अपने में बांध रखा हो. फर्नीचर लाईन के बाद ट्रांसपोर्ट एरिया शुरू हुआ तो बुआ ने चुप्पी तोड़ी, "तुम्हारी मशीन बन जायेगी. . .?"

"नहीं, मशीन नहीं बनेगी बुआ." जमालु सुबक उठा.

दोनों आगे बढ़े गये. बुआ की आवाज भर्रायी, "होटल-दूकानें अभी नहीं खुलेंगी. दूध बिकेगा नहीं. यह करफ्यू हमें तोड़ डालेगा."

रेलवे स्टेशन की तरफ से तभी सीटी की आवाज उठी और सन्नाटे को तोड़ते हुए फैल गयी. शायद रात की कोई एक्सप्रेस खुली थी.

वे गुमसुम मस्जिद एरिया और मैदान पार करते हुए नुक्कड़ तक आ गये, यहां से उन्हें अपनी-अपनी गली में घुसना था. नुक्कड़ पर पहुंचकर वे बिना कुछ बोले रुक गये.

जमालु के दिमाग में जैसे कोई बात कौंधी थी. बात उसकी जुबान से निकलकर बाहर आ गयी, "दूध स्टेशन पर बिक जायेगा. बुआ, यहां से सवारियां भले नहीं चढ़ें-उतरें. जो गाड़ियां रुकेंगी, उनमें दूसरी जगहों की सवारियां जरूर होंगी. रास्ता निकल आ सकता है, बुआ. मुझे भी टिकने की जगह मिल जायेगी. जो पैसे मिलेंगे, उसमें आधा तेरा; आधा मेरा. . ."

चारों तरफ रात का सन्नाटा पसरा था. बुआ और जमालु अंधेरे में बुत की तरह खड़े थे.

"मुझे तो हर तरफ अंधेरा ही अंधेरा दिख रहा है, जमालु, बेटे की मौत ने इस बुढ़ापे में मेरी कमर तोड़ दी. . ." बुआ अचानक फफक पड़ी.

कुछ देर में बुआ की सिसकियां थम गयीं.

"सुन, तू बालटी में दूध लेकर स्टेशन जाया कर." बुआ की आवाज अब भी भारी थी.

"बुआ. . .सच. . .!' जमालु ने भैंस की पीठ सहलायी.

कुकड़ू-कूं. . .कुकड़ू-कूं. . .तभी दूर किसी कोने से मुर्गे ने बांग दी. ☐

● 74 ई, गोरक्षणी पथ, सासाराम (बिहार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

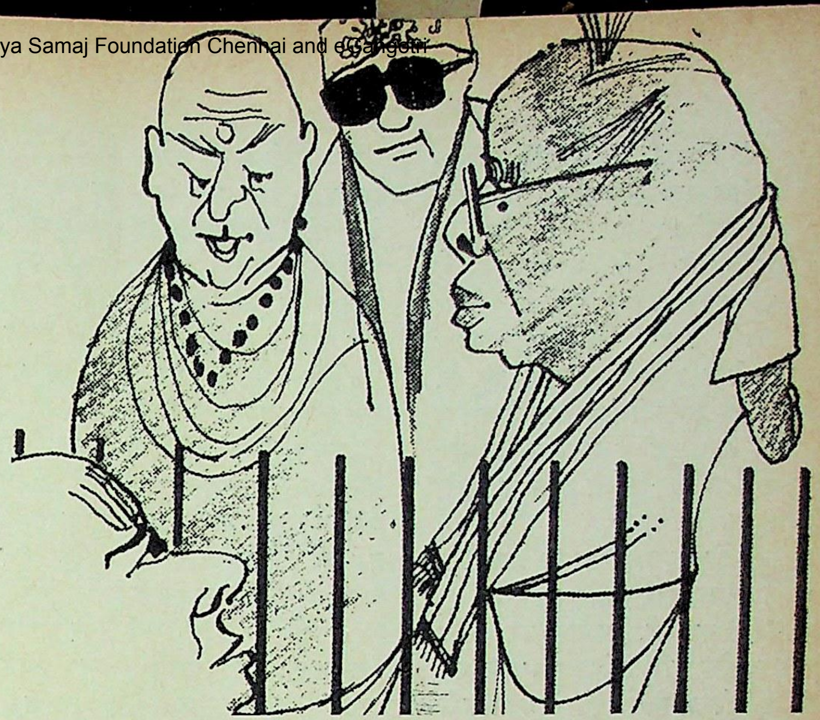

इस बार तुलसीदास दक्षिण की यात्रा पर गये और मिले नंबूदरीपद व टी. रामराव से, फिर वाया महाराष्ट्र हिंदी क्षेत्र में आकर जूझ पड़े––पहले पुलिस, फिर अध्यापक, फिर छात्रनेताओं से . . .

पर्दे के राम और अयोध्या

▣ हरिशंकर परसाई

तुलसीदास ने दक्षिण भारत घूमा. गुरु रामानुजाचार्य दक्षिण से ही आये थे. केरल में भगवान ऐयप्पा पंथ जोरों से चल रहा है. ऐयप्पा दो पुरुष देवताओं के संसर्ग से पैदा हुआ युवक देवता है. यह विश्वास केरल में ही है. भस्मासुर से शिव की रक्षा करने विष्णु मोहिनी रूप धारण करके गये थे और भस्मासुर को अपने हाथ से ही भस्म कराके शिव की रक्षा की थी. पर शिव स्वयं विष्णु के इस रूप पर मोहित हो गये और उससे संभोग किया. तब यह पुत्र ऐयप्पा पैदा हुआ. यह कथा उत्तर भारत में नहीं है. मैंने एक ऐयप्पा भक्त से कहा, "यह क्या दुराचार तुम्हारी कल्प-कथा में हुआ है!" उसने जवाब दिया, "आपका ही काम आगे बढ़ाया है. आपने शिव और विष्णु को मित्र देवता बनाया. हमारे आराध्य शिव रहे हैं. तो हमने अपने शिव से विष्णु का संभोग करा दिया. अब संबंध और प्रगाढ़ हो गया. बात यह है कि इधर साम्यवाद से लड़ने के लिए ऐयप्पा को हमने अड़ा दिया."

तुलसी को याद आया, यहीं तो नंबूदरी ब्राह्मण भगवान परशुराम आकर बसे थे. मैंने पता लगाया तो मालूम हुआ कि परशुराम के वंशज तो कम्यूनिस्ट हो गये. मैं इनके नेता ई. एम. एस. नंबूदरी पद से मिला. मैंने कहा, "तुम परशुराम के उत्तम कुल के हो. तुम नास्तिक कैसे हो गये?"

नंबूदरी पद ने जवाब दिया, "आपने ही तो लिखा है

ग्यानिहिं भगतिहिं नहिं कुछ भेदा,
उभय हरहिं भव संभव खेदा.

हम ज्ञान-मार्गी हैं. नवीन वैज्ञानिक ज्ञान मार्क्सवाद से 'भव संभव खेद' हरना चाहते हैं. हम वर्गहीन समाज की स्थापना करना चाहते हैं."

तुलसी ने पूछा, "कैसा वर्गहीन समाज?"

नंबूदरी पद ने कहा, "वही जो आपका है

सियाराम मय सब जग जानी,
करौं प्रणाम जोरि युग पाणी.

हम भी आपकी तरह मनुष्य-मनुष्य में ऊंच-नीच का भेद नहीं मानते. . . सब सियाराम मय हैं. आप भी तो अघोषित साम्यवादी हैं."

तुलसी ने पूछा, "तुम्हारा ध्येय क्या है?"

नंबूदरी पद ने कहा, "वही जो आपका––रामराज की स्थापना!

दैहिक दैनिक भौतिक तापा
रामराज काहू नहिं व्यापा."

तुलसी चमत्कृत हो गया. उसने कहा, "तुम तो मेरे ही शब्द मेरे मुंह पर फेंक रहे हो. तुम इतने संघर्ष, इतने आंदोलन क्यों करते हो?"

नंबूदरीपद ने कहा, "वही कर रहे हैं, जो आप चाहते हैं.

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी,
सो नृप अवस नरक अधिकारी.

दुनिया में प्रजा को दुखी रखनेवाली बहुत-सी राजसत्ताओं को हम नर्क भेज चुके––जिसके वे अधिकारी हैं."

दक्षिण में ही भगवान राम के दर्शन हो गये––एन. टी. रामराव के. क्या छवि है! कमल लोचन, मुकुट, कुंडल ––आजानु भुज शरचाप धर, संग्राम जित खर दूषणं! खर-दूषण अर्थात् सारे रेड्डी नेता!

बोले, "संतवर, आपके ही लिए मैंने खास तौर पर यह 'मेकअप' किया है. बिल्कुल भगवान राम दिखता हूं न! यहां आंध्रप्रदेश में राक्षसों का राज चल रहा था. मैंने उन्हें परास्त किया और स्वयं सिंहासनारूढ़ हो गया. अब यहां रामराज है."

तुलसी ने कहा, "सो तो ठीक है, खिलौने के रामचंद्र, पर कभी यहां दक्षिण में सी. राजगोपालाचारी, श्रीनिवास शास्त्री, टी. प्रकाशम जैसे नेता होते थे, पर अब तुम, रामचंद्रन, राजकुमार, प्रेम नजीर जैसे फिल्मी हीरो नेता हो गये. बुद्धिजीवियों और राजनेताओं का क्या हुआ?"

रामराव ने कहा, "बुद्धिजीवी कायर निकल गये और राजनेता बदनाम हो गये. हम सेलुलाइड के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाहर गये ही नहीं, तो हमारे चरित्रवान, गरीब परवर और न्यायी की जो छवि पर्दे पर है, उसी पर लोग विश्वास करने लगे. कर्नाटक में मामला कन्नड़ भाषा का है, मगर कन्नड़ के लिए संघर्ष का नेतृत्व फिल्मी हीरो राजकुमार कर रहे हैं. उनके पीछे बुद्धिजीवी और राजनेता चल रहे हैं जुलूस में और राजकुमार की जय बोल रहे हैं. जो ऐसा न करे, वह पिटता है."

तुलसी ने कहा, "फिल्मी प्रभु, वह मामला भाषा और साहित्य का नहीं है, नौकरियों का है. राजकुमार और उनके समर्थक तमिल, तेलुगू, मलयालम और मराठी भाषियों को वहां नौकरी नहीं करने देना चाहते. इस तरह कर्नाटक में तमिल विदेशी होगा, तमिलनाड़ु में तेलुगु विदेशी होगा, आंध्र में कन्नड़ विदेशी होगा."

रामराव ने कहा, "संत प्रवर, आप इधर दक्षिण के झंझट में मत पड़िये. ऐसा बोलेंगे, तो कहीं पिट-पिटा जायेंगे. आप जातिवादी, ब्राह्मणवादी, भाग्यवादी, सामंतवादी, वर्णवादी, स्वर्ग-नर्कवादी, हरिजन विरोधी, नारी विरोधी हैं. इधर ब्राह्मणों से राजसत्ता छीन ली गयी है. आप मेरी एअरकंडीशंड कुटी में रहकर राम-कथा दुबारा लिखिये."

तुलसी ने कहा, "संन्यासी बनना भी कितना खर्चीला हो गया है, रामराव! तुम कीमती रेशमी भगवे वस्त्र पहनते हो. कुटी को एअरकंडीशंड कराते हो."

रामराव ने कहा, "उत्तर के संन्यासी तो हमसे भी ऊंचे हैं. उनके अपने हवाई जहाज हैं, वे बंदूक का कारखाना चलाते हैं, लड़कियां भगाते हैं, कालगर्ल का धंधा कराते हैं—मगर राजनेता उनके चरणों पर गिरते हैं."

तुलसी ने कहा, "अच्छा, रामराव, उत्तर जाता हूं. दक्षिण फिर आऊंगा."

तुलसी महाराष्ट्र पार कर हिंदी भाषी क्षेत्र में आया. एक शहर में सड़क से निकल रहा था. कालेज का समय था. जगह-जगह लड़कियां छेड़ी जा रहीं थीं. उन्हें धक्का देकर गिराया जा रहा था. मगर आसपास के लोग ऐसे चले जा रहे थे, जैसे कुछ हुआ ही नहीं हो. उसने एक आदमी से पूछा, "नारी की इज्जत लूटी जा रही है और तुम सैकड़ों लोग विरोध नहीं करते, उनकी रक्षा नहीं करते. तुम लोग क्या सब नपुंसक हो."

उसने कहा, "आप साधु हैं. दुनियादारी समझते नहीं हैं. छेड़ने वाले भी छात्र ही हैं. मारपीट करते हैं. हम बीच में पड़कर क्या पिटें? हम अपने काम से काम रखते हैं."

तुलसी ने पास खड़े एक पुलिस इंसपैक्टर से कहा, तो उसने कहा, "हम क्या करें? ये लड़कियों पर हमला करने वाले छात्र हैं और अच्छे घरों के हैं. आपका पाला अभी छात्र-नेताओं से नहीं पड़ा. इतनी बात करने पर ही वे आपको ठोंक देते. बात यह है स्वामीजी, कि हम छात्रों से नहीं उलझते. हम पेशेवर गुंडे को पकड़कर हवालात में डाल दें और पिटाई कर दें, तो उसके समर्थन में गुंडों का जुलूस नहीं निकलेगा. मगर इनमें से एक भी बदमाश छात्र का हाथ पकड़ लें, तो कल पुलिस के खिलाफ छात्रों का जुलूस निकल जायेगा. वे नारे लगायेंगे—छात्र-वर्ग पर अत्याचार! इंसपैक्टर को सस्पेंड करो. छात्रों ने अपने को एक वर्ग बना लिया है. हम गुंडे, हत्यारे, डाकू से नहीं डरते. छात्रों से डरते हैं. समाज को खतरा पेशेवर गुंडों से कम है, इन छात्रों से ज्यादा! इन्हें राजनेता पालते हैं."

तुलसी ने पूछा, "इंसपैक्टर साहब, क्या सभी छात्र ऐसे हो गये हैं?"

इंसपैक्टर ने कहा, "नहीं, सिर्फ 2-3 प्रतिशत. मगर रोज यही करते हैं. बस में ये औरतों की चेन छीन लेते हैं. अगर बस में बैठे 40-50 आदमी सिर्फ चिल्लायें, तो भी ये डरकर ढेर हो जायें. पर कोई चिल्लाता भी नहीं है. जब पब्लिक का यह हाल है, तो हम क्या करें? जिसमें पब्लिक की रजामंदी है, वह होने देते हैं. हम 'पब्लिक सर्वेंट' कहलाते हैं न!"

तुलसीदास आगे बढ़ा तो इंसपैक्टर ने पुकारा. बोला, "आप लड़कियां भगाते हैं क्या? या अफीम की तस्करी करते हैं? योगा-क्लास चलाते हैं, या राजनेताओं के लिए अनुष्ठान करते हैं? किन तस्करों से मिले हैं? क्या सी. आई. ए. के एजेंट हैं?"

तुलसी ने कहा, "मैं इनमें से कुछ नहीं करता."

इंसपैक्टर ने कहा, "तो क्यों जिंदगी बरबाद कर रहे हो? अरे, जुए का अड्डा ही खोल लो मेरे क्षेत्र में. हफ्ता देते जाना बराबर!"

तुलसीदास को हंसी आ गयी और दरोगा समझ गया कि यह किसी काम का साधु नहीं. तुलसीदास की भेंट शाम को एक हिंदी के प्रोफेसर से हो गयी. वह उन्हें विश्वविद्यालय परिसर में अपने बंगले ले गया.

तुलसी ने कहा, "अब गुरू, कितने आराम से रहते हो—बंगला है, फर्नीचर है, फ्रिज है, कूलर है, बगीचा है. अब आप लोग बड़े मनोयोग से पढ़ाते होंगे."

आचार्य ने कहा, "नहीं पढ़ाते. पढ़ते भी नहीं हैं. जिस दिन हमारी नियुक्ति होती है, उस दिन हम अध्ययन बंद कर देते हैं. कारखाने का मिस्त्री तो काम करते-करते नयी कुशलता प्राप्त करता जाता है. पर हमने जो पढ़ा है, उसे भी भूल जाते हैं. हम गुटबंदी में, एक-दूसरे की टांग खींचने में और माया जोड़ने में लगे रहते हैं. पढ़ाते भी नहीं हैं क्योंकि छात्र-नेता क्लास ही नहीं लगने देते."

इतने में दो-तीन छात्र नेता आ गये. वे बोले, "तुम तुलसीदास हो न! तुमने इतना कठिन क्यों लिखा?"

"मैंने बहुत सरल लिखा है."

छात्र नेताओं ने कहा, "नहीं, फिर भी कठिन है. तुम 'गीतावली' फिर सरल लिखकर जाओगे. यह कोर्स में है. छात्रों को परेशानी होती है."

तुलसी ने कहा, "काव्य इस तरह कह देने से नहीं लिखा जाता."

वे बोले, "तुम्हें लिखना होगा, वरना विश्वविद्यालय से बाहर नहीं जा सकोगे. हम तुम्हारी हड्डी-पसली तोड़ देंगे."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुलसी ने कहा, "तुम मुझे कोरा साधु समझते हो. देखो, मैं काशी में अखाड़े चलाता था. मैं उस्ताद हूं. तुम तीनों को अभी पीटता हूं. तुम्हारे पास छुरा-वुरा हो तो निकाल लो."

वे बड़े गुस्से से झपटे. तुलसी ने एक के घुटने पर लात मारकर वहीं बिठा दिया. एक के दोनों हाथ पीठ के पीछे बांध दिये और तीसरे को उठाकर फर्श पर पटक दिया और एक घूंसा उसके पेट पर मारा.

तुलसी ने कहा, "तुम हराम की विलासिता से भीतर से खोखले हो गये हो. तुम पिलपिली वीर हो. इसी दम पर गुंडागिरी करते हो, धांधली करते हो, अध्यापकों को डराते हो, पैसे वसूलते हो, समाज के लिए खतरा बनते हो. तुम भ्रष्ट और बेईमान हो. छात्र नेतागिरी को तुमने धंधा बना लिया है. तुम अधेड़ हो रहे हो, मगर कोई काम-धंधा नहीं करते. तुम अस्सी साल की उम्र में मरोगे, तब भी छात्र नेता की तरह मरोगे."

एक ने हिम्मत करके कहा, "यह भ्रष्टाचार और हरामखोरी हमने अपने बुजुर्गों से ही तो सीखी है. हमारे राजनेता, बुद्धिजीवी, शासक, धर्माचार्य, अध्यापक सब भ्रष्ट हैं, पतित हैं. हम आखिर क्या सीखते?"

तुलसी ने कहा, "तुम्हारा तर्क विचित्र है. तुम्हारा बाप अगर गंदे डबरे में गिर गया है तो उसी की तरह तुम भी उसी गंदे डबरे में गिरकर बिलबिलाओगे? अरे तुम जवानों को करना यह चाहिए कि अपने बाप को गंदे डबरे से निकालो."

वे चुप हो गये.

दो-तीन अध्यापक और आ गये थे.

तुलसी ने कहा, "पूरा भारत मैं घूम चुका. इसी हिंदी भाषी क्षेत्र में दो चीजें हैं जो कहीं नहीं हैं. दक्षिण भारत, बंगाल, पंजाब, असम, ओड़िसा, गुजरात महाराष्ट्र—कहीं भी स्त्री सड़क पर या किसी सार्वजनिक स्थल पर नहीं छेड़ी जाती. स्त्री इन क्षेत्रों में सुरक्षित है, सम्मानित है. पर यह जो हिंदी भाषी क्षेत्र हैं इनमें स्त्री को सार्वजनिक स्थानों पर तंग किया जाता है. दूसरी

बात—इसी क्षेत्र में गुंडे छात्र नेता होते हैं. इसका कारण क्या है?"

दर्शन के अध्यापक ने मजाक में कहा, "बात यह है कि इसी क्षेत्र में आर्यऋषि हुए, यहीं वेदों की रचना हुई, यहीं यज्ञ हुए, इसी क्षेत्र में पुण्य सलिला गंगा, यमुना, नर्मदा बहती हैं, इसी क्षेत्र में तत्व चिंतन हुआ, ज्ञान-साधना हुई, यहीं मर्यादा पुरुषोत्तम राम और योगिराज कृष्ण हुए, यहीं गीता का ज्ञान दिया गया, यहीं ऋषि दयानंद ने कार्य किया, यहीं राष्ट्रीय आंदोलन ने जन्म लिया, यहीं संत सूरदास, कबीरदास, तुलसीदास हुए. यह पुण्य क्षेत्र है. इसीलिए यहां विलोम प्रभाव के सारे दुराचार चलते हैं."

दूसरे प्रोफेसर ने कहा, "गोस्वामी जी, मूल कारण है आर्थिक शिक्षितों में बेरोजगारी इतनी अधिक है कि शिक्षा में आस्था ही नहीं है. पढ़नेवालों के सामने अंधकार ही अंधकार है. इसलिए सारे मूल्य टूट चुके. उद्देश्यहीनता के कारण अराजकता है."

तीसरे प्रोफेसर ने कहा, "बात यह भी है कि सांस्कृतिक रूप से यह हिंदी क्षेत्र बहुत पिछड़ा है और अहंकार ग्रस्त भी है. हम लोग भी क्या करें?"

चौथे ने, जो मुझसे शुरू से नाराज था, कहा, "आपने भी क्या लिखा है—गुणहीन ब्राह्मण को पूजो, स्त्री को पीटो, भाग्य में जो होगा वह होगा. आपने सामंतवाद की जय बोली है."

तुलसीदास ने कहा, "भई, हर कवि कुछ हद तक अपने युग के विश्वासों से बंधा होता है. फिर वह क्षमता के अनुसार नवीन चिंतन भी करता है. तुम्हारी शिकायत ठीक है. पर मेरी भी मजबूरी थी. सामंतवाद से दूसरी व्यवस्था की कल्पना भी मेरे समय में संभव नहीं थी. तो मैंने एक आदर्श, मर्यादावान, प्रजापालक राजा राम की कल्पना की. पर तुम मेरे दूसरे विचारों को भी तो देखो. किसी संदर्भ में मैंने भाग्यवाद का उल्लेख किया है, तो कहीं यह भी तो लिखा है—'कर्म प्रधान विश्व रचि राखा, जो जस करहिं सो तस फल चाखा.' ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में किसी बात को नहीं समझोगे. तो गलत समझोगे."

रात काफी हो गयी थी. छात्र नेताओं से मैंने कहा, "तुम्हारी ठुकाई काफी हो चुकी. मुझे मारना हो, तो सुबह यहीं आ जाना."

तीनों लंगड़ाते हुए चले गये.

अध्यापक ने कहा, "अब आप भोजन करके सो जाइये. सुबह होने से पहले आप मुझ पर कृपा करके, विश्वविद्यालय से चले जाइये. मुझे क्षमा कीजिए. कुलपति मुझसे वैसे ही नाराज हैं. जिन छात्र-नेताओं को आपने पीटा और शिक्षा दी, वे पाले हुए हैं. उनकी शराब और मुर्गे का इंतजाम कुछ बड़े प्रोफेसर लोग ही करते हैं. प्रभु! मैं आफत में डाल दिया जाऊंगा. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

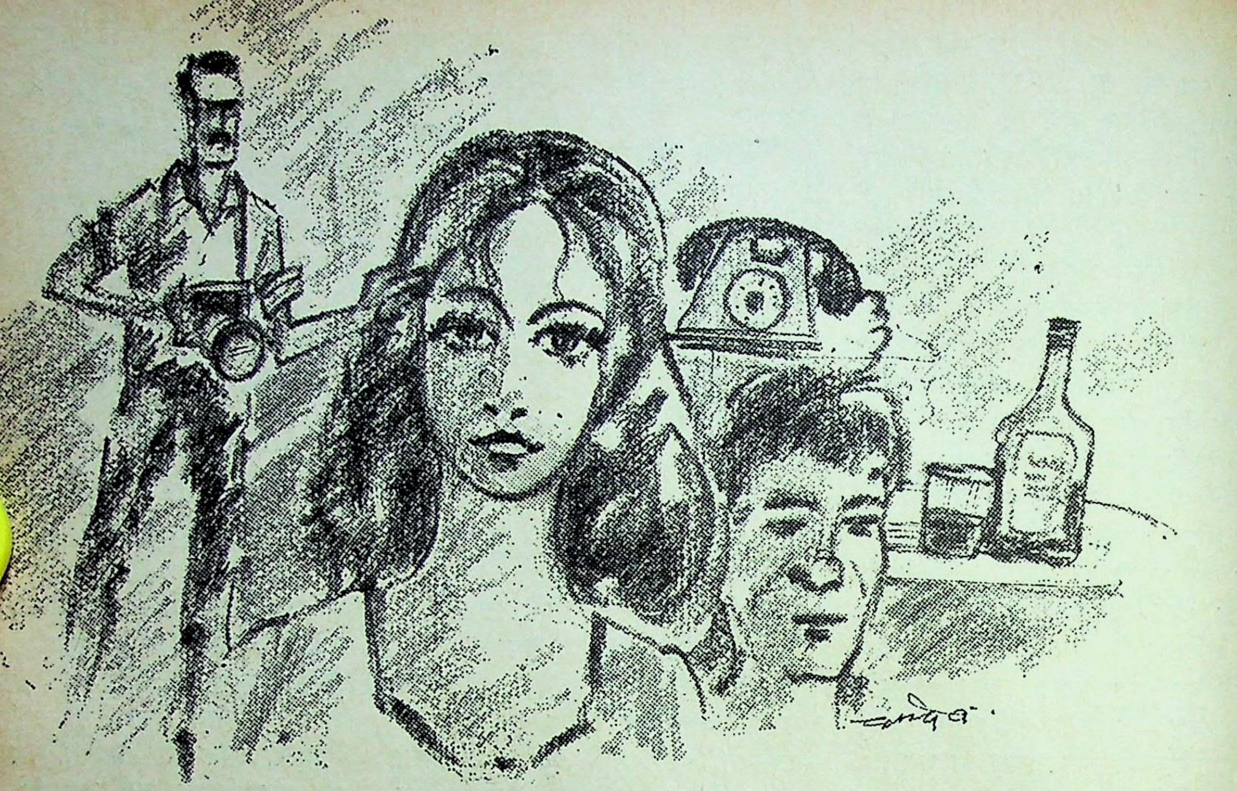

मुस्कान

• स्वदेश दीपक

"खूबसूरत औरतें हमेशा बेवकूफ होती हैं और बदसूरत औरतें अक्लमंद!" यह वाक्य मनु ने कुछ ऊंचा बोला. वह भी जानता है, उसके बैठे दोस्त भी जानते हैं कि यह फिकरा उसने 'मुस्कान' का उद्घाटन करने आयी अभिनेत्री को सुनाने के लिए बोला है. हमेशा औरतों के खिलाफ उनके सामने बोलना, मनु की आदत है, शायद इसीलिए उसकी बहुत सारी औरतें दोस्त हैं. चापलूसी करनेवाले मर्दों के बजाय, खिलाफ बोलनेवाले मर्द, औरतों को हमेशा अच्छे लगते हैं. अभिनेत्री निती ने पास आकर तीखी आवाज में पूछा, "क्या कहा आपने?" वह बहुत सुंदर है जैसा कि अक्सर फिल्मी औरतें होती हैं.

मनु ने अपनी सोयी हुई आंखों को उसके चेहरे पर टिकाया, सिर ऊपर उठा, उसे नीचे से ऊपर तक देखा और मुस्कराकर जवाब दिया, "मैं कह रहा था कि खूबसूरत औरतें हमेशा बेवकूफ होती हैं. आपने शायद अंग्रेजी नहीं पढ़ी. कहते हैं न . . . ब्यूटी एंड ब्रेन डोंट गो टूगेदर!"

तब तक मनु की पत्नी भी उनके पास आ गयी है. बहुत सारे प्रेसवाले और फोटोग्राफर, जो मनु की पत्नी के दोस्त हैं, उस मेज के पास साथ आये हैं. सब मनु के भी दोस्त हैं, जानते हैं, जब मनु बोलेगा तो बातों की गोलियां छूटेंगी. फिल्मी पत्रिकाओं के लिए इससे अच्छी मसालेदार खबर और क्या होगी. मनु की पत्नी किरण उसे घूर रही है, चुप हो जाने के लिए.

"आप हैं कौन? परिचय तो दिया नहीं." कोई भी प्रसिद्ध आदमी किसी अनजान का परिचय जब सारे लोगों के सामने मांगता है तो असल में उसे अपमानित कर रहा होता है.

"मैं आपकी सहेली किरण यानी 'मुस्कान' की मालकिन का हस्बैंड हूं."

"बस!" निती का निचला होंठ ऊपर उठ आया है. बस 'यही कुछ' की मुद्रा में प्रेसवालों, मनु के दोस्तों, सबको लगा कि आज मनु हार गया है!

मनु ने हौले-से गिलास उठाया, बाकी की शराब पी, गिलास नीचे रखा, साथ खड़े फोटोग्राफर से सिगरेट मांगा, फिर माचिस मांगी, सिगरेट का कश लिया और दोनों चीजें फोटोग्राफर को वापस की.

"बस नहीं साहब, मेरा नाम मनु है. मैं किरण का पति हूं. दो बच्चे हैं. लड़की दस साल की, लड़का पांच साल का. बच्चे मैं और भी पैदा कर सकता हूं, लेकिन दो के बाद कभी नहीं, वाली बात मानता हूं. मेरी उम्र चालीस है. कद पांच फुट दस इंच और वजन 170 पौंड. एम.ए. पास कर रखी है."

अभिनेत्री के चेहरे पर भूखी शेरनी आ बैठी है. कैमरों के फ्लैश चमक रहे हैं और मनु जैसे 'कुछ हुआ ही नहीं' वाले अंदाज में सिगरेट पी रहा है.

एक प्रेसवाला निति से पूछता है कि वह बंबई में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतनी बिजी है, इतनी सारी फिल्मों में काम कर रही है, फिर यहां आने का वक्त कैसे निकाल लिया.

निती को अब पहली बार सब लोगों का ध्यान अपनी तरफ बांटने का मौका मिला है. सधी हुई अभिनेत्री है. गुस्से को पल भर में अपने चेहरे से पोंछ लेती है. लोगों के लिए सब कुछ लुटा देनेवाले रोल करने में वह माहिर है, "बिजी हूं तो क्या हुआ? मैं अपने दोस्तों को कभी नहीं भूलती, आप शायद जानते नहीं, कुछ साल पहले मैं किरण के साथ माडलिंग करती थी. मुझे फिल्मों में ब्रेक मिल गया. लेकिन जैसे ही किरण का खत आया कि उसने एड-एजेंसी शुरू की है तो बंबई में सब कुछ छोड़-छाड़कर यहां आ गयी, किरण अगर कहे तो इसकी एजेंसी के लिए मैं माडलिंग करने को भी तैयार हूं." उसने बोलना बंद किया. सुननेवालों की तरफ इस तरह देखा कि तालियां क्यों नहीं बजाते क्योंकि सारे के सारे मेहमान विज्ञापन एजेंसियोंवाले हैं, अखबारवाले हैं.

"पर यार एजेंसी का नाम अंग्रेजीवाला रखना था, यह 'मुस्कान' क्या हुआ?" निति ने किरण के कंधे पर हाथ रखकर पूछा.

किरण बताती है कि अंग्रेजी के कई नाम. . . सोचे, गोल्डन, टच सन-रेज, स्माइल. . . वगैरह पर मनु ने कहा कि कोई नयी बात होनी चाहिए. उसने यही नाम चुना है. मनु और उसके दोस्त अपनी मेज से उठकर वहां आ गये हैं. जवाब मनु पूरा करता है, आप जानती है न मैडम किरण को विज्ञापन की दुनिया में 'गर्ल विद गोल्डन स्माइल' कहा जाता है. एड एजेंसी इसकी है. सारे मुल्क में इसकी मुस्कान घर-घर में फैली हुई है. बस 'मुस्कान' नाम रख दिया!" यह जवाब देते हुए मनु की आवाज दब गयी है. कंधे थोड़े झुक गये हैं. आखें और ज्यादा सो गयी हैं. निती उसके हाथों से खाली गिलास लेती है, मेज पर रखती है, पास खड़े वेटर की ट्रे से शराब का गिलास उठाती है, उसे पकड़ाती है, और फिल्मवालों का सबसे सस्ता वाक्य बोलती है, "यू आर द जीनियस!" मनु उसे आंखें पूरी खोलकर देखता है, प्रेसवाले दोस्त से फिर सिगरेट मांगता है और दो लंबे कदम उठाकर अपनी मेज पर वापस चला जाता है.

वह शराब का गिलास बिना पिये मेज पर रखता है और दरवाजे के बाहर निकल जाता है. मकान की बालकानी में नंवबर की हवा निधड़क घूम रही है. उसने आधी बाहों का स्वेटर पहन रखा है. फिर भी गर्मी लग रहीं है. कमीज की बाहें ऊपर चढ़ा लेता है. एक बार सर्दियों में बाहें ऊपर चढ़ाने की आदत पर किरण ने टोका था तो उसने जवाब दिया था, "कमीज की बाहें नीची हो तो लगता है हाथ कैद हैं." ऐसे जवाब सुनकर पत्नी उसकी ओर ऐसे देखती है जैसे पागलों को देखा जाता है.

वह शाम को घंटों बालकनी में खड़ा रहता है, रेलिंग है, पर बाहें टिकये सिगरेट सुलगाये, लोगों को शाम के वक्त पैदल, स्कूटरों पर, कारों पर, अपने घरों की ओर लौटते देखना अच्छा लगता है. लोगों के चेहरे से पता चल जाता है कि दफ्तर जा रहे हैं या घर लौट रहे हैं. लेकिन मनु तो घर के बाहर जाता ही नहीं न किसी काम पर, न कभी दफ्तर. उसे शायद तभी घर लौटते लोग देखना अच्छा लगता है. उसकी बेटी रानी ने एक बार पूछा था, "पापा इतनी देर बालकनी में खड़े क्या देखते हो?"

"रानी बेटा किसी दिन तारें गिनता हूं, किसी दिन स्कूटर, किसी दिन साइकिलें."

"क्यों?"

उसने रानी बेटी का कान छूकर कहा था, "इससे गणित अच्छा हो जाता है, तुम भी गिना करो, गणित में नंबर कम आते हैं न!"

"ओ पापा! . . . यू आर फनी!"

हां, पहले जो बातें किरण को अच्छी लगती थी, रानी को भी लगती थी, अब दोनों को फनी लगती है. किरण को पता नहीं लगता है कि अब दो मंजिला मकान है, खाने-पीने की कमी नहीं फिर भी मनु घंटों चुप क्यों रहता है. कोई तकलीफ नहीं बताता कोई एतराज भी नहीं करता.

कोठी-कार और हर ऐशोआराम पाने के बाद ऐसी कौन-सी कमी रह जाती है जीवन में कि जिसे आदमी, आदमी को नहीं, सिर्फ भगवान को ही बताना चाहता है? प्रस्तुत है, सुख-दुख का एक झीना रेखांकन—

उसके सारे दोस्त, खासकर शादीशुदा, उसकी बीवी की सदाबहार मुस्कान देखकर कितना रश्क करते हैं. अपनी बीवियों को किरण की मिसाल देकर मुस्कराने की सलाह देते हैं. कई बार उसके अमीर दोस्तों ने उन दोनों के सामने अपनी बीवियों को डांटा है, "इन दोनों को देखो, नपी तुली आमदनी है फिर भी किरण हरदम मुस्कराती रहती है. और तुम?. . .शिकायतों ने चेहरे पर घरना दे रखा है!"

हां, यह ठीक है. किरण हर वक्त, हर हाल में मुस्कराती रहती है. मनु ने इस मुस्कान के अनगिनत रूप देखे हैं. गुस्सा होगी तो होंठ थोड़े टेढ़े करेगी, मुस्करायेगी. खुश होगी तो निचले होंठ पर जीभ का सिरा छुयेगी, मुस्करायेगी. गर्मी होगी तो 'उफ' कहते ही दोनों होंठों की लंबाई बढ़ायेगी, मुस्करायेगी. सर्दी होगी तो 'हाय कितनी ठंड' कहकर होंठों को सिकोड़कर मुस्करायेगी और. . . और. .. हर हालत में मुस्कान! विज्ञापन की दुनिया में उसका नाम है—द गर्ल विद अ गोल्डन स्माइल' छोटा नाम 'स्माइल गर्ल' कपड़ों साड़ियों वगैरह की ग्रुप-मार्डलिग में बाकी माडल लड़कियां अब उसके साथ ग्रुप में फोटो खिचवाने से इंकार करती हैं. क्योंकि किरण की घातक मुस्कान से उन्हें डर लगता है. हीनभावना पैदा होती है. आज इस मुस्कान की बदौलत दो मंजिला मकान है, कार है और आज अपनी विज्ञापन एजेंसी भी शुरू हो गयी है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह सलाह मनु ने दी थी कि उद्घाटन उसकी फिल्मवाली सहेली से करवाया जाये. पत्रकार, फोटोग्राफर, बड़ी-बड़ी कंपनियों के डायरेक्टर आयेंगे, घर के सामने भीड़ आयेगी फिर पुलिस आयेगी और उद्घाटन एक समाचार बन जायेगा. बालकनी के नीचे, घर के आगे अब भी सैंकड़ों लोग खड़े हैं!

पहले यह मुस्कान सिर्फ उसकी थी, अब घर-घर की है. कैलेंडरों पर, साड़ियों, साबुनों के, सिरदर्द की गोलियां, सैनेटरी टावल्ज, जूतों, टायरों के इश्तहारों में किसी भी पत्रिका के किसी भी पेज पर उसकी मुस्कान का दमकता सूरज.

कितने बरस हुए होंगे इस बात को, जब यह मुस्कान उसके घर से निकली और हर घर की बन गयी. आठ-दस लेखकों की बीवियों को लेकर उसके पत्रकार दोस्त ने कोई लेख लिखना था. पत्रिका का फोटोग्राफर भी उसका दोस्त था. पत्रकारों, फोटोग्राफरों, लेखकों का अड्डा जमाने की जगह उसका घर हुआ करता था, अब भी है. वजह? क्योंकि किरण मुस्कराकर शरबत शराब गिलासों में डालती थी, किसी को चढ़ जाये तो मुस्कराकर डांटती थी, यही वजह है कि बीवियों में वह अप्रिय थी बदनाम थी. लेखक दोस्त मनु से कितना जलते थे, लिखता अच्छा है, खाता अच्छा है, बीवी भी अच्छी है. उसे उनके जलने से मजा आता था, क्योंकि वह जानता है कि बहुत सारे लेखकों को उनकी कलम उतना बरबाद नहीं करती, जितना उनकी बीवियां.

किरण की फोटो छपी थी और नीचे एक वाक्य था वक्तव्य 'मुझे अपने लेखक पति मनु की कमजोरी अच्छी लगती है क्योंकि वह लिखता अच्छा है!'

लेख छपने के कुछ दिन बाद फोटोग्राफर दोस्त आया था और बताया कि किसी छोटे लाला ने नये ब्रांड की माचिस बनायी है, साथ किरण का फोटो छापना चाहता है. फोटोग्राफर का कद पांच फुट से छोटा था लेकिन नाम था समरजीत सिंह. मनु ने उसे खा जानेवाली आंखों से देखकर कहा था, "ओए चूहे, माचिस और औरत की क्या तुक है?"

समरजीत को अपने चूहे नामकरण पर कभी ऐतराज नहीं हुआ था, क्योंकि जवाब देना उसे भी आता था, "ओए हेंगिग्वे की औलाद, तू बस कहानियां डाला कर. दुनिया में क्या हो रहा है इससे तुम लेखकों का क्या वास्ता? अगर टायरों की मजबूती के साथ औरत की तस्वीर छप सकती है तो माचिस के साथ क्यों नहीं?"

किरण ने भी मजाक किया था, "चूहे भाइसाहब, आज दिन के वक्त तो नहीं लगा ली?"

"देख किरण, तू चुप रह, अकल की बात से तुम औरतों का क्या वास्ता. अब पीने की बात तुमने ही छेड़ी है, तो ला फौजी रम पिला."

रम का आधा गिलास चढ़ाने के बाद चूहे ने बताया था कि किरण को पांच सौ रुपये मिलेंगे और उसे सौ रुपये. पांच सौ की बात सुनकर किरण के चेहरे पर मुस्कान आयी थी. टेबल फैन देखा था, छत देखी थी, जिसमें पंखा लगाने का कुंडा था लेकिन पंखा नहीं. उसे किरण की यह आदत बहुत-बहुत पसंद थी कि किसी चीज के घर में न होने को लेकर औरतों की तरह बखेड़ा नहीं करती, सिर्फ उस जगह को देखकर जहां वह चीज होनी चाहिए मुस्करा दिया करती थी. चूहे ने आखिरी दाव चलाया था, "अरे पांच सौ से एक महीना 'विस्की' पियेंगे. फौजी रम पी पीकर पेट भी अटेंशन हो गया है!"

बात पक्की हो गयी. चूहे की अगली फरमाइश थी कि विज्ञापन के साथ हिंदी में एक लाइन मनु लिखे.

"इश्तहार तो अंग्रेजी में चलते हैं. हिंदी में लाइन क्यों?"

चूहे ने जल भुनकर समझाया, "क्योंकि माचिस सिर्फ तेरी अमीर मांयें इस्तेमाल नहीं करती, गरीब मांयें भी इस्तेमाल करती हैं. और उन्हें हिंदी आती है, अंग्रेजी नहीं."

उसके ना-नू करने पर किरण ने डांटती-मुस्कान का वार किया था, "इतने बड़े लेखक बने फिरते हो, एक फिकरा नहीं लिखा जाता."

मनु ने आधे वाक्य का विज्ञापन बनाया था, माचिस जलाते हाथों की तस्वीर के ऊपर—'हमारी माचिस जलाइए और. . . ' दूसरी तस्वीर में किरण का मुस्कराता चेहरा फुलझड़ी छुड़ाते बच्चे की मुस्कानवाला!

माचिस बहुत बिकी. इसलिए नहीं कि किरण की तस्वीर थी, इसलिए कि दूसरी माचिसों की तरह खोलते हुए इसकी डिबिया टूटती नहीं थी. लेकिन इसके बाद घर के बाहर इश्तहारवालों के फोटोग्राफरों की लाइन लग गयी थी. तब किरण को बंबई के 'ब्लेज' और 'पार्कर एंड पार्कर' वालों का बुलावा आया था. मनु को साथ चलने के लिए कहा तो वह बोला, "नहीं काम करना हो तो अकेले जाने की आदत डालो, फिर मैं साथ हूंगा तो शायद कांट्रेक्ट मिले ही न!"

"क्यों, क्यों नहीं मिलेगा? उन लोगों ने बुलाया है."

मनु ने उसे बताया कि फिल्मी दुनिया में, विज्ञापन की दुनिया में विवाहित औरतों का भाव गिर जाता है, माडल के कंवारे होने के का एक अतिरिक्त आकर्षण होता है. किरण को सलाह भी दी कि बंबई में किसी को भी यह बताने की जरूरत नहीं कि उसका पति है, एक बच्ची है. हां, काम जम जाये तब दूसरी बात है.

किरण पंद्रह दिन बंबई लगाकर लौटी थी तो शिकायत की थी, "अजीब लोग हैं. . . किसी स्कूटर का विज्ञापन था. मुझे झुककर सीट पर बैठने के लिए कहा. . . तस्वीर सलवार-कमीज में खींची जानी थी, शायद पंजाब में इस स्कूटरों की बिक्री कम थी. फोटोग्राफर भी अजीब झक्की. कहने लगा, 'सारे बटन खोल दीजिए. "

"ठीक सलाह थी. स्कूटर गर्मी के मौसम की सवारी है. शुकर करो, उसने शार्ट्स पहनकर फोटो खिंचवाने के लिए नहीं कहा!"

"अरे आगे सुनो, कमीज के बटन तो मैंने खोल दिये. ब्रा देखकर वह जल बुझ गया. कहने लगा इसे उतार आओ."

"ठीक कहा उसने. देखो, जब तक औरत के जिस्म के कुछ जरूरी हिस्से नजर न आयें लोगों की निगाह इश्तहार पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्ण का दुख

▣ हरीश नवल

कृष्ण के मथुरा-गमन के पश्चात गोपियों ने कुछ दिन तो इसी उम्मीद में काट लिये कि कृष्ण शीघ्र लौट आयेंगे, किंतु जैसे-जैसे अवधि बढ़ती गयी वैसे-वैसे गोपियां विरह में व्याकुल होने लगीं. उन दिनों दूर-संचार की व्यवस्था तो थी नहीं, आते-जाते यात्रियों के द्वारा गोपियों ने अनेक संदेश कृष्ण तक प्रेषित किये, किंतु न वे कभी लौटे और न ही कोई संदेश भेजा. इससे गोपियां बहुत खिन्न व उदास रहने लगीं, तब भी उन्होंने आशा न छोड़ी. कभी-कभी वे मथुरा मार्ग को निहार लेती थीं कि शायद वे आयें. एक दिन गोपियों को मथुरा-मार्ग पर एक रथ आता दिखायी दिया, फिर पीले वस्त्र पहने कोई पुरुष उसमें दिखायी दिया. प्रसन्नता व उत्सुकता से वे उस ओर लपकीं, उन्हें लगा कि वे कृष्ण ही हैं, किंतु रथ के समीप आते ही उन्होंने पाया कि वह तो कोई और ही है. वे उद्धव थे, जो कृष्ण का संदेश लाये थे. यह जानकर कि वे कृष्ण के मित्र हैं. गोपियों ने कृष्ण के विषय में प्रश्नों की बौछार उन पर छोड़ दी.

उद्धव ने चिंताजनक स्वर में बताया, "कृष्ण की दशा ठीक नहीं है, वे प्रायः खिन्न रहते हैं, मानसिक स्थिति कुछ ठीक नहीं है, शरीर भी बिगड़ गया है, आर्थिक अभाव है. कर्ज हो गया है, सारा दिन जाने क्या सोचते रहते हैं!"

कृष्ण की ऐसी दीन-हीन दशा जानकर गोपियां व्याकुल हो उठीं, उन्हें लगा कि उनकी बिगड़ी स्थिति का कारण हम हैं, जैसे हम उन्हें याद कर-कर मृतप्रायः हो रही हैं, वैसे ही वे हमें याद करते होंगे. दुखी होने के साथ-साथ गोपियों को भीतर से कहीं यह अच्छा भी लग रहा था कि वे अभी भी हमें इतना चाहते हैं. मगर वे इस बात को उद्धव के मुख से सुनना चाहती थीं.

"हे उद्धव, कृष्ण की दशा ऐसी क्योंकर हो गयी?" अनजान-सी बनती राधा ने पूछा.

"उन्होंने एक लघु पत्रिका निकाल ली है!" दबे स्वर में उद्धव ने उत्तर दिया. □

● सी-2/3, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-7

पड़ती ही कहां है?"

किरण का मुंह सूज गया

"देखो किरण, एक बात का फैसला कर लो, जिस दुनिया में गयी हो उनके तौर-तरीके मानकर ही चलना होगा. विज्ञापन की दुनिया का सबसे जरूरी आदमी है, फोटोग्राफर. वह किसी माडल को बना सकता है, बरबाद कर सकता है."

और थोड़े वक्त में किरण नंबर एक माडल बन गयी. जूतों का इश्तहार है तो पत्नी की तस्वीर के साथ—"जूता आप पहनें और आपकी पत्नी. . .' दूसरी तरफ किरण की तस्वीर—चमकृत मुस्कानवाली! तौलियों के इश्तहार—बड़ा-सा तौलिया लपेटे किरण—'द फैदर टच' किरण की मुस्कान—'आओ, लेकिन. . . धीरे-से छूनावाली!"

पहले मकान था, किराये का, तीन साल बाद अब अपना है. नंगी दीवारें धीरे-धीरे ढंकती गयीं—सामने लगी साबवाला की पेंटिंग, शायद दस हज़ार में आयी थी. कोने सजा जपानी टेलिफोन. . .उसके बाद कार.

पहले मनु दो वक्त अच्छी रोटी खाता था, अब दो वक्त अच्छी शराब पीता है. हमेशा कमरा बंद करके लिखता था. अपना घर लेने के बाद जब वह तीन घंटे के बाद बंद कमरे से बाहर आया था तो किरण ने पूछा था, "कितने मिल जाते हैं एक कहानी के?"

"यही कोई दो सौ."

वह मुस्कराई, 'बस्म' वाली मुस्कान, "मत सिर खपाया करो. . . पांच सौ तो तुम्हें रोज की एक लाइन के मिल जाते हैं."

मनु सच की हमेशा इज्जत करता है. किरण ने कहा तो सच है. पहले उसका 'सिर खपाना' कम हुआ अब कई सालों से बंद है.

टी. वी. पर विज्ञापन आने शुरू हुए तो किरण की मुस्कानें घर-घर में खिलने लगी. एक विज्ञापन को तो टाईजेस्ट वालों ने वर्ष के सर्वोत्तम विज्ञापन का पुरस्कार भी दिया था.

इस विज्ञापन से पहले घर में पहली और आखरी लड़ाई हुई थी. किरण को दो महीने बाद पता चला था कि उसे दूसरा बच्चा होनेवाला है. पहली बार बिना-मुस्कान मनु पर बरसी थी, "तुम मुझसे जलते हो. मेरा कैरियर बरबाद करने पर तुले हो, इस मोटे पेट के साथ मुझे कौन माडल लेगा? क्यों अपना घर जो माडलिंग के पैसों से खरीदा है अच्छा नहीं लगता? सारी जिंदगी रम पीते रहे हो, विस्की पचती नहीं है क्या?"

उसे अब मनु के गुस्से से डर नहीं लगता. मनु आम मरदों की तरह दिन में दो-तीन बार गुस्सा नहीं होता. साल में एक आध बार और तब उसके सिर पर खून सवार हो जाता है. किरण के सामने जब पहली बार उसे गुस्सा आया था तो तो उसकी जान निकल गयी थी. दोनों बस में कहीं जा रहे थे. नयी-नयी शादी हुई थी. शायद मनु का हाथ उसके कंधे पर था. पिछली सीट पर तीन आदमी धीरे-धीरे आवाजें कस रहे थे. किरण डर गयी, मनु का हाथ कंधे से परे किया तो मनु ने बांह फलाकार उसके दोनों कंधों पर रख दी थी. पीछे से आवाज आयी, "भाई फिल्म की शूटिंग मुफ्त में देख लो!"

दूसरी आवाज, "पर यार, हीरो पहलवान लगता है."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनु सीट से उठा, पीछे मुड़ा. वह किसी पर हाथ उठाने से पहले गालियां देकर उसे चौकस कभी नहीं करता. लड़ाई की यह ट्रिक उसे एक फौजी ने बतायी थी. उसने उन तीनों में सबसे तगड़े आदमी की नाक पर हथेली रखी थी, सिर के पिछले सिरे पर दूसरा हाथ रखा था. हथेली दबाकर मुंह पीछे किया और हाथ दबाकर सिर आगे. नाक की हड्डी चिटखने की आवाज साफ सुनायी दी थी. खून के छींटें आसपास गिरे थे!... बाकी दो को मनु ने घूरकर पूछा था, "तुम्हें भी परशाद चाहिए?"

दोनों कांप रहे थे, "नहीं भाईसाहब, हम आपसे कुछ नहीं कह रहे थे. आपको गलती लगी है, हम तो फिल्म देखकर आ रहे हैं. बातें कर रहे थे." ड्राइवर ने बस रोकी थी. उन तीनों के पास आया था. टूटी नाकवाला मुह पर रूमाल दबाकर खून रोकने की कोशिश कर रहा था. उसने उन तीनों को अपनी लंबी दाढ़ी पर हाथ फेरकर समझाया था, "पहलवानों, बंदा देखकर पंगा लिया करो. अगले स्टाप पर उतरकर इसको डाक्टर के पास ले जाओ."

घर पहुंचकर किरण ने कहा था, "तुम राईटर हो कि गुंडे!... न बाबा मैं तुम्हारे साथ कभी सफर नहीं करूंगी."

... मनु बालकनी से नीचे सिगरेट फेंकता है. हां, उस दिन की पहली और आखिरी लड़ाई...

मनु ने धीमी आवाज में जवाब दिया था, "तुम्हें पता है न मुझसे ऊंची आवाज में नहीं बोलते."

किरण चुप हो गयी, उसे मनु का खून–सवार चेहरा अब तक याद है. मुस्करायी थी—हार माननेवाली मुस्कान, "तुम तो जानते हो, अगर एक साल मैंने काम न किया तो कौन पूछेगा, शेप में आने के लिए वक्त तो लग जायेगा."

मनु ने धीमी आवाज में कहा था, बच्चा पैदा करना है तो ठीक, नहीं तो एबार्शन कर लो. अभी दो महीने ही तो हुए हैं."

किरण चुप हो गयी थी. जानती है, मनु का लगातार धीमी आवाज में बोलना खतरे की निशानी होता है!

अब उसने घर से बाहर निकलना बंद कर दिया था. पेट मोटा हो गया है. एक दिन 'चूहे' ने उसका पेट देखकर कहा था, "सुनो किरण, मुझे दवाइयों की कंपनी का एक विज्ञापन मिला है... हो जाये एक फोटो!"

"समरजीत सिंह, तुमने बहुत तो नहीं चढ़ा ली?" किरण ने चूहे का पूरा नाम लेकर उसका अपमान किया. अब चूहा प्रेस फोटोग्राफर नहीं, किरण की वजह से विज्ञापन एजेंसियों में फोटो खींचता है.

चूहे ने जब विज्ञापन की थीम बतायी तो मुन ने भी हां कर दी और यह विज्ञापन साल का सबसे अच्छा विज्ञापन

पहलू-दर-पहलू

▣ अखिलेंद्र पाल सिंह

बस से उतरते ही सिगरेट की तलब लगी और लापरवाही से पीछे की जेब में उंगलियां चलायां तो धक्क रह गया. आनन-फानन में कमीज-पैंट की तमाम जेबें टटोल मारीं. यों तो उसने बस में दूसरों की जेबें कटते हुए सुना था, पर बात ही बात में 200 रुपये से लुट जाने के संताप ने जैसे उसके पैरों की जान ही निकाल दी! उसने एक बार फिर जेबें टटोलीं. सिर्फ रेजगारी ही बाकी थी. वह सोचने लगा कि अभी तो महीने में बीस दिन बाकी हैं. उसने एक बार फिर सोचा कि वह जेब टटोल ले और सामने सिनेमा पर लगी भीड़ में जाकर टिकट का जुगाड़ करे, चाहे ब्लैक से ही, पर जल्दी ही उसे मान लेना पड़ा कि जेब कट चुकी है.

वह चाय की दुकान के सामने पड़ी बेंच पर न चाहते हुए भी बैठ गया और एक सिगरेट खरीदकर हारे हुए अंदाज में धुआं उगलने लगा.

"बाबूजी. . . पालिश!" ध्यान भंग होते ही उसने देखा. एक मैले-कुचैले शरीरवाला लड़का थैला-सा लटकाये उसके धूलभरे जूतों को देख रहा था. उसके जी में आया कि वह लड़के के गाल पर थप्पड़ मारकर अपने रुपयों का गुस्सा उतार मारे!

"साब, बगैर क्रीम पच्चीस और क्रीम पालिश पचास पैसे साब. . .!" वह कुछ और कहना चाहता था, पर उसकी लाल-लाल आंखें देख वह सहम गया और जाने लगा तो अचानक उसने टोका, "ए लड़के, जरा ढंग की करना और अपना जूता आगे बढ़ा दिया. उसे लगने लगा था कि शायद लड़के के दिमाग में यह बात न आ गयी हो कि बाबूजी की जेब में पचास पैसे भी नहीं हैं!

जैसे ही उसने सिगरेट का आखिरी कश सूतकर सिगरेट फेंकी. दुबला-पतला लड़का बोला, "लो साब, चमका दिये. . . क्रीम ज्यादा लगायी है."

उसने पच्चीस पैसे निकालकर लड़के की तरफ बढ़ाये तो लड़का ठिठक गया और बोला, "साब, क्रीम भी लगायी है... पचास पैसे साब!"

"अबे ये क्रीम लगायी है?... साले पालिश भी सस्तीवाली लगायी है... लेता है या नहीं?" और वह उत्तेजित होकर उठ खड़ा हुआ और घर जानेवाली बस के बारे में सोचने लगा.

"साब. . . पचास पैसे बनते हैं... क्रीम ज्यादा लगायी है."

उसने गुस्से में पच्चीस पैसे फेंकते हुए कहा, "लेना हो तो ले वरना. . ." लड़का जमीन पर पड़े पैसों को देखता रहा. जब वह बस में बैठा तो उसे दो सौ रुपये खो जाने पर नहीं वरन् लड़के की हठधर्मी पर गुस्सा आ रहा था. ☐

● ए–74 सूर्य नगर, दिल्ली–यू.पी. बार्डर, गाजियाबाद (उत्तर प्रदेश)

Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुना गया था. आधा वाक्य मनु ने लिखा था—केमिस्ट की दुकान के अंदर जाती किरण. . . बांछें फाड़कर पूछता केमिस्ट— 'क्या चाहिए बहिनजी'. . . अपने उभरे पेट की तरफ देख मुस्कराती किरण—मुझे बच्चे पैदा करना अच्छा लगता है वाली मुस्कान!. . . आंखें मटकाकर बोलता केमिस्ट 'ओ, . . . ग्राईपवाटर!' " टी. वी. सिनेमाघर और पत्रिकाओं में आज भी इस इश्तहार का बोलबाला है.

कोई बाहर बॉलकनी में आया है. उसके पास आकर रुका. बेटी रानी है, दोनों हाथ पीछे किये हुए, "अंदर चलो पापा!"

"अभी आया अंदर गर्मी है."

"चलो न पापा सब बोर कर रहे हैं. . ."

"यह हाथ क्यों पीछे कर रखे हैं."

रानी हाथ आगे करती है, शराब से अधभरा गिलास है, "खट से पी लो पापा, मम्मी को पता नहीं चलने दिया."

आजकल मनु और रानी की टीम बनी हुई है, किरण के खिलाफ बेटी, बाप का साथ देती है. बाप की राजदार है. वह एक घूंट में गिलास खाली करके रानी के साथ अंदर आ जाता है, आवाजों और रोशनियों के जाल में

समरजीत पार्टी में अभी-अभी पहुंचा है. मनु डपटता है, "ओए चूहे! देर से क्यों आया है? अपनी किस मां के पास बैठा था!"

चूहा चायवाले मॉडल की तरफ इशारा करता है, "इस कंजर को लेने गया था. प्लेन एक घंटा लेट था."

बैरा चूहे के पास शराब के गिलासोंवाली ट्रे लाता है. वह गिलास उठाता है, देखता है, फिर दूसरा गिलास उठाकर शराब पहले में डाल देता है, मनु को शराब खत्म तो नहीं हो चली के जवाब में कहता है, "देर से आया हूं हेमिग्वे की औलाद, जल्दी पिऊंगा तो तुम लोगों के साथ पहुंचूंगा."

निती अपनी मेज पर आ गयी है. चूहे को जानती है. उसके 'हैलो' के जवाब में 'नमस्ते बहिनजी' कहता है. एक्ट्रेसों और मॉडलों को चूहा बहिनजी कहकर बुलाता है.

"जैक बड़ा 'विप' मॉडल है भाई, समरजीत को एयर-पोर्ट लेने जाना पड़ा. वह 'वी. आई. पी.' को विप बोलता है.

हां 'चायवाला' माडल जैक-किंग सचमुच आजकल 'विप' है. वैसे असली नाम सेवक राम शर्मा है, गोरा-चिट्टा है, इसलिए जैक किंग नाम उस पर फबता है. भला सेवकराम शर्मा नाम हो तो क्या कोई माडल या एक्टर बन सकता है. किंग और किरण का चायवाला विज्ञापन पिछले चार सालों से टी. वी. और सिनेमाघरों में रोज दिखाया जाता है जैक किंग सो रहा है. किरण चाय का प्याला लिये पास आती है. जैककिंग आखें खोलता है. किरण मुस्कराती है—रात की थकानवाली लेटी मुस्कान! जैककिंग चाय का प्याला होठों को लगाता है. अगला शॉट —माथे पर टेनिस के खिलाड़ी बोर्ग की तरह पट्टी बंधे टेनिस खेलना. . .

निति मनु से पूछती है, "किंग आपसे रूठा हुआ है क्या?" जवाब चूहा देता है, "मां दा यार! चाय पीकर पहलवान बनता है. एक दिन मनु के हाथों मरतेमरते बचा," चूहे को जल्दी चढ़ जाती है, "बास्टर्ड को 'चायवाली' एड के बाद जो भी औरत चाय पेश करती है, उसे अपनी बीवी समझता है. . . ब्लडी!"

मनु को अगर दूसरों का अपमान करने में मजा आता है तो वो बातें सुनाने में भी मजा आता है जो खुद उसके लिए अपमानजनक है. अपनी कई बार हुई पिटाई की बातें वह अक्सर मजे ले लेकर सुनाता है.

हां, किंग उसके हाथों पिटते-पिटते बचा था.

मनु बताता है कि तीन साल पहले एक शाम चूहे ने कहा था, "मनु एक बात कहूं!"

"बोल."

"सुन, किरण से मॉडलिंग का काम बंद करवा दे."

"यह तू कहता है? याद नहीं शुरू भी तूने करवाया था."

चूहा शराब का गिलास उठाने लगता है, मनु उसका हाथ पकड़ लेता है, "पहले बात कर, फिर पीना."

"वह चायवाला माडल है न! पिछले चार दिन से ओबराय में ठहरा है और. . . किरण सारा दिन उसके पास रहती है."

"तुझे कैसे पता?"

"कुछ फिल्म एक्टर भी वहां ठहरे हैं. उनके फोटो खींचने गया था. खुद अपनी आंखों से किरण को उसके साथ अंदर जाते देखा था."

"तुझे कैसे पता कि रोज वहां जाती है?"

"असिस्टेंट मैनेजर मेरा दोस्त है. उससे पूछा था. उसने कहा 'चार दिन से यह औरत किंग के पास आती है. . .' तुम्हें पता है, दोनों के चेहरे फेमस हैं. उसने पहचान लिया."

यह बात सुनने के बाद मनु मुस्कराया था तो चूहा और डर गया था.

"सुन समरजीत, तू उसको जानता है," मनु उसका असली नाम ले रहा है. उसे पता है कुछ न कुछ होकर रहेगा.

"हां, क्यों?"

"उसे कल शाम यहां बुला ले!"

अगली शाम किंग आया था, किरण ने जीन्स के साथ काला पुलोवर डाल रखा था. मनु ने बड़ी गर्मजोशी से उसे रिसीव किया. पहला अपमान चूहे ने किया था, "यह सेवकराम शर्मा है. . . 'चायवाला' माडल."

किरण ने बचाव किया तीखी मुस्कान के साथ, "तमीज से बोला कर. . . इनका नाम जैक किंग है."

मनु को लगातार मुस्कराते देख, किंग को विश्वास हो गया कि इससे डरने की कोई बात नहीं, चाहे इसे पता भी चल जाये कि किरण के साथ उसका अफेयर चल रहा है. वह बंबईवालों की तरह डबल लार्ज पी रहा है, आन द राक्स-बिना पानी मिलाये अपनी मर्दानगी की धौंस जमाने के लिए. बेचारे को पता नहीं, फौजी रम ऐसे नहीं पी जाती, आदमी जल्दी घोड़े पर चढ़ जाता है.

"किरण की मुस्कान बहुत अच्छी है!" उसने मनु को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये सुरक्षा भरी धुलाई... सनलाइट की कोमलता से आई.

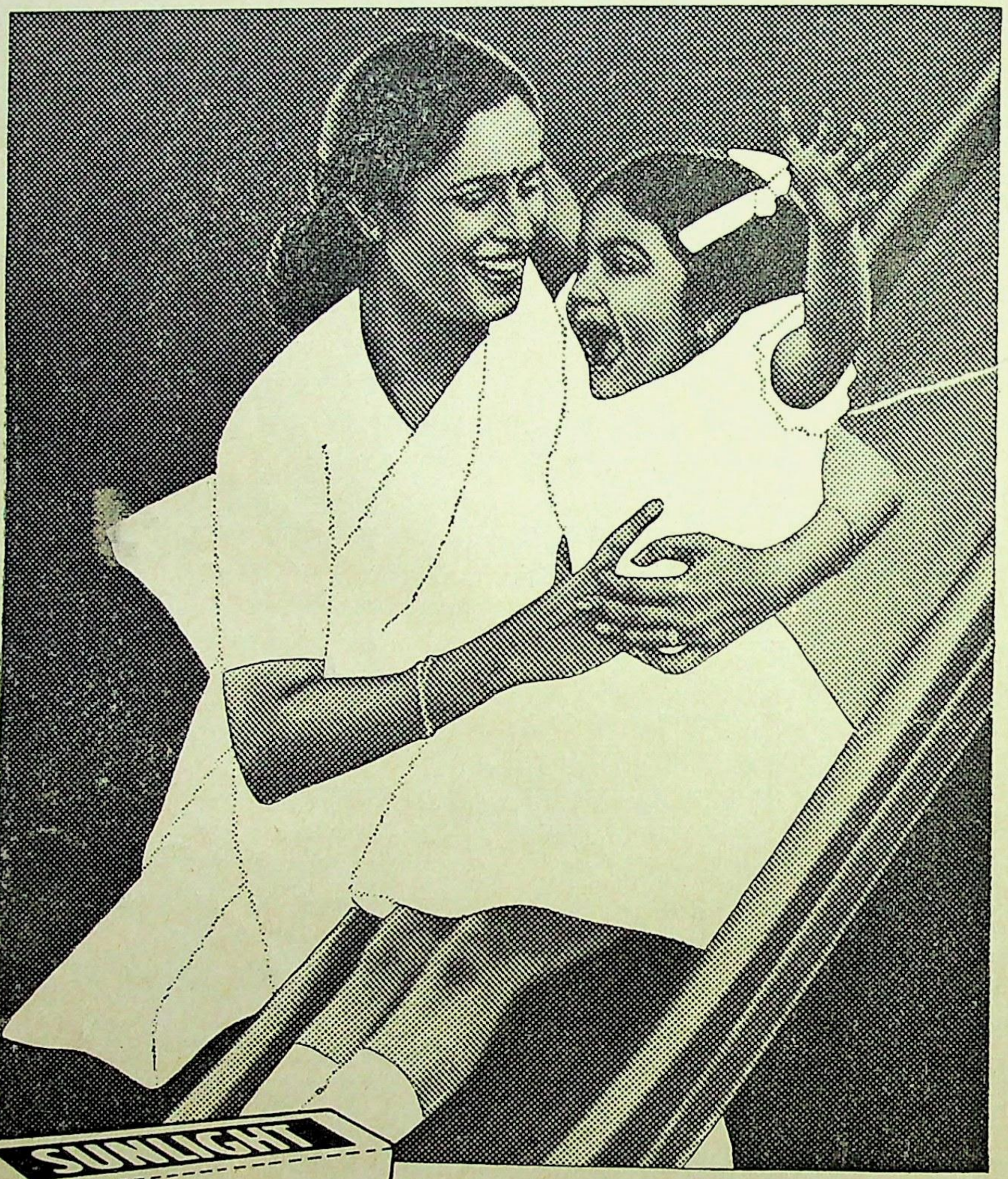

शुद्ध सनलाइट पूरी कोमलता से आपके कपड़ों की हिफ़ाजत-भरी धुलाई करता है...और आपके हाथों पर भी कोई आंच नहीं आने देता. सनलाइट अपनाइए और पाइए रंगीन कपड़ों को ज़्यादा चमकदार और सफ़ेद कपड़ों में सफ़ेदी शानदार.

कपड़ों की देखभाल सनलाइट का कमाल

हिन्दुस्तान लीवर का एक उत्कृष्ट उत्पादन.

LINTAS SUN 7 2015 HI

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation

को खुश करना चाहा था.

"दूसरी और चीजें भी बहुत अच्छी हैं." मुस्कराकर जवाब दिया था.

"तुम वल्गर हो रहे हो." किरण की समझानेवाली मुस्कान.

"वेल्गेरटी शब्दों में नहीं, काम में होती है."

"मनु साहब, आप करते क्या हैं?" किंग की बीच-बचाव वाली अवाज.

"करता क्या हूं? ... कुछ नहीं मजे करता हूं."

"नहीं! मनु झूठ बोलता है. . . बहुत बड़ा राईटर है!" किरण की गर्वीली मुस्कान!

"देखो किरण, तुम्हें आखरी बार बता रहा हूं. मेरा परिचय लेखक कहकर मत दिया करो!" मनु की मुस्कान बंद. वह किरण को पहले भी ताकीद कर चुका है कि अपने दोस्तों को सिर्फ उसका नाम बताया करे, लेखक होने की बात कहने की कोई जरूरत नहीं. इससे बड़ा अपमान किसी लेखक का क्या हो सकता है कि उसका नाम बताने के बाद यह भी बताना पड़े कि वह लेखक है.

चूहे ने किंग को सलाह दी, "प्यारे, रम, हौले-हौले पीया कर, चढ़ जायेगी."

किंग को शराब अब अतिरिक्त ताकत दे चुकी है. चूहे के पांच फट के कम कद को घरकर देखा, जवाब दिया, "यह छोकरियों की तरह छोटे पैग तुम पिया करो. हम मर्द हैं. मर्द! मर्दोंवाले पैग पीते हैं."

"जानते हो तुम जैसे मर्दों को पंजाब में क्या कहते हैं?"

"क्या?" किंग ने गिलास मेज पर रखकर पूछा.

"लड़के का लड़का, माशूक की माशूक! . . . दो-दो मजे!"

तभी साथवाले कमरे का दरवाजा धड़ाम-से खुलता है. पांच साल का बच्चा भागकर अंदर आता है, पीछे-पीछे भागती एक लड़की. मनु निती को बताता है उसका लड़का है विक्रम, बच्चे का चेहरा दमक रहा है.

"मुझे दो.' वह मनु के हाथ से गिलास लेता है, घूंट भरता है थूक देता है, "कड़वी है, कैंपावाली दो."

किरण पीछे भागकर आयी लड़की को डाटती है, "इसे अंदर क्यों आने दिया?"

"मैं जरा टायलेट गयी थी. . ."

"तो क्या मुसीबत है, अगर बच्चा अंदर आ गया है." निती बीच में बात काटती है. विक्रम की पीठ पर हाथ रखकर अपने पास खींचना चाहती है. बच्चा डांट देता है, "परे हट, हाथ मत लगा. निती झटके-से हाथ खींच लेती है, हैरान हो कर किरण को देखती है. वह सफाई पेश करती है, "बाप ने बिगड़ दिया है, कोई छुए तो इसे गुस्सा आता है."

लड़के को इन बातों में कोई दिलचस्पी नहीं. पिता को डाटंता है, "मेरी कैंपावाली दो", विक्रम हमेशा रम को कैंपा समझता है, थोड़ी पी लेता है.

"ओए चूहे, जा अंदर से रम ले आ. अब यह हमारा बाप छोड़ेगा थोड़े."

चूहा रम लाता है, थोड़ी-सी गिलास में डालता है, कैंपा मिलाता है, विक्रम को देता है, वह घूंट भरता है, चूहा पूछता है, "सब ठीक है साहबजी!"

"हां, अच्छी है... और दो."

रानी छोटे भाई का हाथ पकड़कर अंदर ले जाना चाहती है, "चल अंदर, कहनी सुनाऊंगी... नयीवाली!"

"बक बक मत कर, नहीं तो मारूंगा मुंह पर थप्पड़!"

किरण, निती को बताती है कि जब वह घर पर नहीं होती तो मनु के फौजी और पुलिस के दोस्तों का अड्डा जमता है. और मर्द जब बिना औरतों के बैठे हो तो गालियां देकर बातें करते ही हैं. विक्रम को मनु के दोस्त रोज नयी गाली सिखाते हैं, पीने की आदत भी इन लोगों ने डाली है. इसलिए कोई पार्टी हो तो नौकरानी को हिदायत होती है कि विक्रम को कमरे में बंद रखे. सबके सामने गालियां देता है तो कितनी इन्सलट होती है.

लघुकथा सलामी

■ अनवर शमीम

चोरी-छिपे गांजा बेचने के आरोप में, एक छोटी पूंजी के चाय-पान विक्रेता को पकड़कर थाने में नये दारोगाजी के सामने पेश किया गया. दारोगाजी ने अपनी बात एक भद्दी गाली से शुरू की. . . "चाय-पान की दुकान में गांजा बेचता है. देश को धोखा देता है. गद्दार. ..स्साले . . . चमड़ी छील लूंगा!" और उसे चार-पांच झांपड़ जड़ दिये.

वह कांपकर रह गया. उसकी आंखें पनिया गयीं, "हजूर, गरीब आदमी हूं, एक बेर माफी दे दो. अब दुबारा ऐसी गलती नहीं करूंगा. चाहे बाल-बच्चे भुक्खे मर जायें." एक बेर माफ कर दो सरकार, बस्स! सिरफ एक बेर!"

"तू गांजा किससे लेता है रे?"

"रामचंदर से सरकार!" वह मिमियाया.

"वो तो पुराने दारोगाजी का आदमी है. कान खोलकर सुन ले, अब तू गांजा इनसे लिया करेगा." सामने की कुर्सी पर बैठे हुए एक भद्दे किस्म के व्यक्ति की ओर इशारा करते हुए दारोगाजी ने कहा, "ये मेरे खास आदमी हैं, समझा?"

"समझ गया हजूर." वह चहका.

"और सुन, मेरा हिस्सा भी टाईम पर. . . !"

"हां-हां सरकार, आप बेफिकिर रहिए!"

"साले सारे दुकानदार यहां आकर सलामी दे गये और तेरे लिए पियादा भेजना पड़ा. अपने आपको अकड़ेखां की औलाद समझता है क्या, आंय!"

"गलती हो गयी सरकार." उसने झटसे कहा और पचास रुपये का एक नोट टेबल पर रखकर अपनी जगह हाथ जोड़कर खड़ा हो गया. दारोगाजी ने एक भद्दी गाली के साथ उसे जाने की इजाजत दे दी और वह एक चुस्त सलामी ठोंककर थाने के बाहर आ गया. □

● डायमंड कासिंग ब्लाक न. जो, धनबाद-826001

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विक्रम गिलास आगे बढ़ाता है. चूहा कहता है, "बस साहब बहादुर, आपका कोटा पूरा हो गया."

"रैट के बच्चे, बक-बक करता है. मारूंगा जूता!"

"सच्ची बहुत गालियां देता है." निती की आवाज में डर कि कहीं सबके सामने उसे गाली दे दी तो!

जवाब चूहा देता है, "बाप लेखक और मां माडल. गालियां नहीं देगा तो क्या रामायण की चौपाइयां पढ़ेगा."

मनु ने गिलास जोर से नीचे रख दिया है. 'ठक' की आवाज हुई है. चूहे को पता है, उसे लेखकवाली बात नहीं करनी चाहिए थी, "सारी मनु!"

निती मनु को लगातार घूरकर देख रही है. दिमाग में बंद यादों की फाईल के पन्ने पलट रहे हैं.

"आप वही मनु है!"

मनु रम की बोतल उठाता है, गिलास आधा भरता है, चूहा पानी डालता है, मनु लंबा घूंट भरता है, गिलास खाली कर देता है. विक्रम मनु को देखता है, सबके खामोश चेहरे देखता है, उसे पता है, जब पापा गुस्से होते हैं तो सब चुप हो जाते हैं, डर जाता है. बहन से कहता है, "दीदी बस, मझे नींद आयी है." रानी उसका हाथ पकड़कर उसे बैड रूम की तरफ ले जाती है.

निती को इस तनाव का एहसास नहीं होता, "हम कालेज में थे तो आपकी कहानियां पढ़ते थे. हमेशा बातें करते थे, कितना छोटा नाम है 'मनु'... और कितनी लंबी कहानियां लिखता है."

रानी बैड रूम से लौट आयी है. पूछती है, "पापा खाना लगवाऊं, मुझे भूख लगी है." उसने कमरे में फैल रहे खतरे को सूंघ लिया है.

"हां बेटा, लगवा दो."

मनु चूहे के आगे खाली गिलास सरकाता है. चूहा किरण की ओर देखता है, मैं क्या करूं वाली नजरों से.

"उस मां की तरफ क्या देख रहा है, डाल शराब," मनु का सिर अब नीचे झुक गया है.

निती अपनी बात जारी रखती है, "मैंने आपको कई खत लिखे. आपने जवाब ही नहीं दिया."

मनु रम के गिलास को घूर रहा है, निती की ओर बिना देखे जवाब देता है, "जैसे आप अपने फैन्स के खतों का जवाब नहीं देती, वैसे मैं फैन्स के खतों का जवाब नहीं देता था."

चूहा और किरण किचन की तरफ जाते हैं, खाना लगाने के लिए. दोनों को पता है आज मनु बस से बाहर हो गया है, कुछ न कुछ होगा.

निती बात बदलती है, "किरण की मुस्कान सचमुच गोल्डन है. जानते हो जीनत जब माडल थी तो किरण के साथ ग्रुप माडलिंग में फोटो नहीं खिंचवाती थी. इसकी मुस्कान से डरती थी."

अब मनु निती को कैसे समझाये कि किरण की मुस्कान के हजारों-हजारों रूप लोगों के दिलों में घर किये बैठे हैं. मुस्कराती वह घर में भी है पर पिछले कई सालों से लगातार एक ही अर्थवाली मुस्कान... 'तुम हो क्या!'

खाना मेज पर लग गया है. सब लोग वहां बैठ गये हैं. मनु अपनी जगह पर बैठा पी रहा है. रानी उसकी बांह छूकर कहती है, "पापा, खाना ठंडा हो रहा है."

"अच्छा बेटे, एक ट्रंक-काल कर लूं."

किरण कहती है, "मनु बिहेव योअरसेल्फ."

"कर लेने दो न." निती कहती है. अब किरण निती को कैसे समझाये कि बहुत पी लेने के बाद आजकल मनु अक्सर यह ट्रंक-काल करता है.

इससे पहले कि किरण जवाब दे, चूहा अपनी जगह से उठता है, मनु के पास आता है. उसका हाथ झटका देता है, "मनु उठ जा, नहीं तो आज मैं मारूंगा!"

"नहीं, मुझे ट्रंक-काल करना है."

"मनु चुप हो जाओ, नहीं तो आज कुछ होकर रहेगा." किरण की धमकी!

"मम्मी शाउट मत करो, पापा को काल करने दो.."

बेटी की डपट के जवाब में किरण की मुस्कान...मैं हार गयी वाली.

रानी फोन उठाती है, पापा के पास लाती है, मेज पर रखती है. मनु ट्रंक-काल के लिए नंबर घुमाता है... आपरेटर शायद नंबर पूछता है, मनु जवाब देता है, "आई डोंट नो द नंबर बट गिव मी गॉड!"

उधर से शायद हैरान आपरेटर 'क्या' कहता है.

"आपको अंग्रेजी समझ नहीं आती! मुझे भगवान का नंबर दो."

कमरे में सन्नाटा छा गया है, बम फटने के पहले पता होनेवाला सन्नाटा!

रानी मनु के हाथ से फोन लेती है, "पापा आपने नंबर गलत मिलाया," वह बटन दबाकर कनेक्शन काट देती है.

"क्यों बेटे?"

"आपको इंटरनेशनल ट्रंक बुकिंग का नंबर घुमाना चाहिए था!"

"क्यों बेटे?"

"भगवान हिंदुस्तान में थोड़े रहते हैं. मैं नंबर मिलाती हूं." फिर वह झूठ का नंबर घुमाती है, फोन पिता को पकड़ाती है, "लो पापा, बात कर लो!"

मनु कई बार 'हैलो... हैलो' करता है, शिकायत भरी आवाज में बेटी से कहता है "जवाब नहीं आ रहा!"

"जरा ऊंचा बोलो न पापा. बहुत दूर बात हो रही है." कहते हुए उसने अपने पिता के सिर पर हाथ रख दिया है.

सबको पता नहीं ऐसा क्यों लगता है कि वह दस साल की बच्ची बड़ी-बूढ़ी हो गयी है... मनु की बेटी नहीं बिल्कुल मां लग रही है!

और पता नहीं वह ताकतवर आदमी, जिसका नाम मनु है, जिसका कद पांच फुट दस इंच है, जिसका वजन एक सौ सत्तर पौंड है, गॉड से एकतरफा कौन-सी बातें कर रहा है... क्या पूछ रहा है...? □

● 108, द माल, अंबाला छावनी-133001

Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समीक्षा सुख

□ मथुरादास

संपादक जी को शिकायत रहती है कि मथुरादास अपना स्तंभ नियमित नहीं भेजते. दरअसल यह गलती मथुरादास की नहीं है. ढाई बरस के जनता पार्टी के राज में ऐसी गड़बड़ियां फैल गयी थीं कि हर चीज अनियमित हो गयी थी. स्तंभ भी नियमित होने में समय लगेगा. मथुरादास जादू की छड़ी मुंह में दबाकर तो पैदा नहीं हुए.

खैर, मैं यह कोशिश कर रहा हूं कि स्तंभ सीधे नहीं बल्कि इनसेट एक-बी के जरिए भिजवाया जाय. इनसेट के जरिए समाचार आये तो उसमें एक तरह की शान महसूस होती है. भले ही हम खिचड़ी खाएं लेकिन गोद में नैपकिन रखकर छुरी-कांटे से खाएं तो एक तरह का आभिजात्य चेहरे से टपकने लगता है.

अब आप दूरदर्शन को देखिए, समाचारों के बाद एक मंसबदार बाकायदा इनसेट के सम्मान में खड़ा होकर (कायदे से उसे पहले इनसेट को आदाब बजाना चाहिए) बताता है कि इनसेट एक-बी से मिली तस्वीर के मुताबिक गरज के साथ छींटे पड़ेंगे. इसकी अपनी शान ही और है. अभी तक मौसम विभाग खबर भेज देता था कि गरज के साथ छींटे पड़ेंगे और लोग समझ लेते थे कि कुछ नहीं होने वाला, इसलिए बगैर छाते के चलो. इससे विभाग बदनाम होता था. अब गरज के साथ छींटे पड़ने की बात कृपापूर्वक इनसेट बताता है. अगर गरज के साथ छींटे न पड़े तो हमारा दुर्भाग्य. कोई हमें विलायती इत्तर दे जाये और हम उसे गोबर में उलट दें तो इत्तर का क्या कुसूर? गरज के साथ छींटे पड़ेंगे यह बात अटल होती है, क्योंकि इनसेट ने कही. नहीं पड़ते तो हमें सोच लेना चाहिए कि विघटनकारी शक्तियां सक्रिय होंगी.

तो भाई, मथुरादास अब स्तंभ इनसेट से भेजेंगे. उससे एक और लाभ है. पोस्ट ऑफिस के लाल बंबे में कालम का लिफाफा घुसेड़ो तो मामला कुछ देहाती-देहाती-सा लगता है. इनसेट से मामला अंतरराष्ट्रीय हो उठता है.

हां, यहां यह जरूर कहना चाहूंगा कि पारिश्रमिक के मामले में मथुरादास पिछड़े तरीकों यानी चेक के डाक द्वारा आये लिफाफे से ही संतोष करना पसंद करेंगे.

आलोचक होने में लाभ अनेक हैं, हानि कोई नहीं. अगर आप आलोचक हैं तो सबसे पहले तो आप लोगों को डरा सकते हैं. साहित्यकार पुलिस के सिपाही से भी उतना नहीं डरता, किसी बदमाश से भी कम ही डरता है क्योंकि बदमाश खुद कविता से कतराकर निकलना पसंद करता है. साहित्यकार चोर-डकैत से भी नहीं डरता. डरता है तो सिर्फ आलोचक से.

साहित्कार को डराने के लिए आलोचक के पास कई हथियार होते हैं. पहला हथियार तो यह कि वह किसी भी लेखक की किताब की समीक्षा करते हुए वह उसे बकवास सिद्ध कर सकता है. इसके लिए किताब पढ़ने की जहमत उठाना भी कोई जरूरी नहीं. दूसरा खासा मारक हथियार चुप्पी होता है. आप दस लेखकों का जिक्र करें और ग्यारहवें के बारे में चतुराई के साथ सन्नाटा खींच जाएं या उसे इत्यादि वाली श्रेणी में शामिल कर दें. आपका हथियार चल गया.

लोगों ने इधर समीक्षा और आलोचना के इस शूरतापूर्ण कार्य को काफी आसान भी बना लिया है. आचार्य रामचंद्र शुक्ल के जमाने में

मथुरादास की डायरी

इस वक्त साहित्य की बड़ी दुर्दशा है. जब तक अच्छा आलोचक साहित्य के फटे में टांग नहीं अड़ाएगा, साहित्य फटता ही जायेगा. टांग अड़ जाने पर साहित्य को फाड़ने वाले साहित्यकारों पर जो भी गुजरे, पर साहित्य का हित ही होगा, इसीलिए मथुरादास अपनी टांग की कुर्बानी देने पर उतारू हो रहे हैं . . .

खैर, यह तो विषयांतर था (पारिश्रमिक वाला प्रसंग नहीं) सूचना यह देनी थी कि मथुरादास बाकायदा आलोचना के मैदान में आने वाले हैं. इस वक्त साहित्य की बड़ी दुर्दशा है. जब तक अच्छा आलोचक साहित्य के फटे में टांग नहीं अड़ाएगा साहित्य फटता ही जायेगा. टांग अड़ जाने पर साहित्य को फाड़ते रहने वाले साहित्यकारों की हरकतें कम होने लगती हैं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समीक्षा करना कुछ ऐसा कष्ट साध्य-काम था, जैसे पैदल चारों धाम घूमना. अगर कोई चारोंधाम की तस्वीरें अपने कमरे में लटका ले और बारी-बारी से उन्हें झांक आए तो यह यात्रा कितनी सहज और सुखद हो जाती है.

चतुर आलोचक अपने चारोंधाम अपने कमरे में ही बना लेता है. बहुत से झंझट तो इधर कवियों ने खुद कम कर दिये हैं. रत्नाकर पर लिखने के लिए छंद से लेकर ध्वनि अलंकार और रस जैसी बहुत-सी बेकार की बातें जानना जरूरी हो जाता था. कबीर जैसा कोई गड़बड़ कवि पल्ले पड़ जाये तो दर्शन, इतिहास जैसी तमाम दूसरी बातें जाननी पड़ जाती थीं.

अब मामला इसीलिए बहुत सीधा कर लिया गया है. आलोचना के लिए बाकी कुछ पढ़ना तो जरूरी नहीं ही है, आप जिसकी आलोचना कर रहे हों, उसकी भी किताब न पढ़ें तो भी काम चल सकता है. बल्कि साहित्य समीक्षा में आप साहित्य भी न छुये तो भी मजे में आलोचना लिख सकते हैं.

आप कहेंगे, ऐसी आलोचना कैसी होती है. मैं बताता हूं. मान लीजिए मथुरादास 'डेन्मार्क के साए' नामक किसी उपन्यास की समीक्षा करना चाहते हैं. वे कुछ इस तरह लिखेंगे.

'लेखक जीवन के अंतरंग के आतंक को झेलता हुआ असंतुलित संबंधों की कुछ बुनियादी सचाइयों के मानक प्रस्तुत करके समय की पड़ताल करता है. इस प्रक्रिया में उस पर जो रचनात्मक दबाब होते हैं, वह उसके युगबोध की साक्षी देते हैं. रचनागत तनाव अनुभूतिपरक तनाव के बीच से उभरता है और कृतिकार मानवीय नियति में हस्तक्षेप करके मूल्यों से साक्षात करता है. प्रस्तुत रचना 'डेन्मार्क के साए' ऐसे ही अनुभवों का रेखांकित दस्तावेज है. इत्यादि'.

क्या समझे आप? मैं भी कुछ नहीं समझा और मथुरादास भी कुछ नहीं समझते. ऐसी समीक्षा समझी नहीं भोगी जाती है. बल्कि इसका आस्वादन किया जाता है. इससे आप न सिर्फ लेखक को बल्कि दूसरे समीक्षकों को भी चक्कर में डाल सकते हैं.

इसका सबसे बड़ा लाभ तो यह है कि यह न तो किताब को स्वीकार करती है न अस्वीकार. न उसे बुरी बताती है, न अच्छी. लेखक के दुश्मन इस समीक्षा को किताब की निंदा मानकर खुश हो सकते हैं और मित्र इसे तारीफ समझ कर सुखी होंगे.

ऐसी समीक्षा लिखने के बाद अगर आप सुरती खाने की आदत डाल लें तो और ज्यादा मजे में रहेंगे.

समीक्षक की मांग अध्यक्षता और प्रवचन के लिए सहसा बढ़ जाती है. ऐसे में रवायती समीक्षक झंझट में फंस सकता है. उसे भाषण से पहले होमवर्क भी करना हो सकता है. नया समीक्षक इस परेशानी से बचा रहता है. वह नेता की तरह से कहीं भी और कभी भी प्रभावशाली भाषण देने को तैयार रहता है.

नेता को आप साहित्य समारोह के उद्घाटन के लिए बुलाएं (परसाई से क्षमा याचना सहित) तो भी वह कहेगा देश के सामने बड़े संकट हैं. विघटनकारी शक्तियां सिर उठा रही हैं. उसे पुल के उद्घाटन के लिए बुलाएं तो भी विघटनकारी शक्तियों की ही याद दिलाएगा. कभी-कभी वह इससे भी आगे बढ़ सकता है.

बाराबंकी उत्तर प्रदेश में एक जिला है. जी हां, वही, किशनचंदर की सरगुजश्त (मेरा मतलब उनके गधे की सर गुजस्त) वाला. वहां एक बार रफी अहमद किदवई साहब का जन्मदिन मनाया जा रहा था. जो नेता उस उत्सव का उद्घाटन करने गए, वे बोले: हमें गर्व है कि बाराबंकी में मोहम्मद रफी जैसा बेजोड़ गायक पैदा हुआ.

समीक्षक साहित्य में भी यह हरकत कर सकते हैं. उन्हें कोई टोकेगा नहीं. टोकने की हिम्मत ही नहीं होगी. इसीलिए मथुरादास अब बाकायदा हिंदी समीक्षा में टांगक्षेप करने वाले हैं. □

आधुनिकता

▣ श्रीनिवास जोशी

पैवंद लगी धोती पहने मां एक डिब्बे में घर का बना देसी घी और बाप मजदूरी से बचाये सौ रुपये लेकर शहर में पढ़ रहे अपने बेटे रमेश के हॉस्टल जा पहुंचे. कमरे पर ताला पड़ा था. दोनों बरामदे में बैठकर प्रतीक्षा करने लगे.

अंधेरा होते ही रमेश डिस्को धुन पर गीत गाता हुआ कमरे का दरवाजा खोलने लगा. अचानक उसकी नजर मां-बाप पर पड़ी, "तुम यहां कैसे..." उसने इतना ही कहा था कि मिडी पहने मार्गरेट वहां से गुजरी, "हैलो रमेश, हू आर दे?"

"दे आर फैमिली सर्वेंट्स फ्राम द विलेज."

मां-बाप की आंखों से खुशी के आंसू बह निकले कि बेटा अब अंग्रेजी भी बोलने लग गया है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

▣ 'किसी देश के किसी शहर में' शीर्षक-योजना के अंतर्गत कथाकार रमेश उपाध्याय आजकल रूपक कथा में अभिव्यक्ति की संभावनाओं का जायजा ले रहे हैं. इस श्रृंखला में लिखी जा रही कुछ कहानियां सारिका में क्रमशः प्रकाशित की जा रही हैं. इस बार प्रस्तुत है, पहली कहानी. ▣

किसी देश के किसी शहर में एक आदमी भूखा घूम रहा था. वह जिंदगी में कई तरह के काम कर चुका था और कोई भी काम कर सकता था, लेकिन उसे काम नहीं मिल रहा था. बात यह थी कि वह आदमी अपने दिल और दिमाग को सही-सलामत रखकर काम करना चाहता था, जब कि काम देने वाले चाहते थे कि या तो वह अपने दिल और दिमाग को उनके हाथ बेच दे, या निकाल कर फेंक दे. वह आदमी ऐसा नहीं कर पाता था, इसलिए मेहनती और कार्यकुशल होने के बावजूद हर जगह से हटा दिया जाता. इस बार भी वह इसी वजह से बेकार और भूखा घूम रहा था.

लोग उसे भीख देने को तैयार थे, लेकिन भीख वह लेता नहीं था. वह भीख मांगकर देख चुका था. भीख में मिली चीजों से पेट तो किसी तरह भर जाता था, पर दिल और दिमाग खाली होने लगते थे. और दिल-दिमाग से खाली होना वह चाहता नहीं था.

काम करने और भीख मांगने के अलावा भी उस देश में पेट भरने के कई तरीके थे. वह आदमी उन तरीकों को भी आजमा चुका था. उनमें दिल और दिमाग को बेचना पड़ता था और ऊपर से मुसीबत यह कि उन तरीकों से पेट जितना भरता था, उतना ही खाली होता जाता था. कितना भी खाओ, भूख मिटती नहीं थी.

इसलिए वह आदमी काम चाहता था. लेकिन काम मिल नहीं रहा था.

"तुम बोझ क्यों नहीं ढोते?" एक आदमी ने उसे सलाह दी, "बोझ ढोना भी तो एक काम है? मेरा यह सामान स्टेशन पहुंचा दो, मैं तुम्हें मजदूरी दूंगा."

उस आदमी ने सोचा—ठीक तो है, बोझ ढोना भी एक काम है. और उसने बोझ ढोना शुरू कर दिया.

बोझ ढोनेवाले उस शहर में और भी थे, लेकिन वह आदमी बोझ भी अपना दिल और दिमाग लगाकर ढोता. वह देख लेता कि बोझ किसका है और कैसे ढोना चाहिए. मसलन, गंतव्य तक जल्दी पहुंचना चाहनेवाले तेज-कदम और मजबूत आदमियों का बोझ लेकर वह लगभग दौड़ता हुआ चलता, भले ही हांफ जाता और पसीने-पसीने हो जाता. बूढ़ों और बीमारों का बोझ लेकर चलते समय वह अपनी चाल धीमी रखता. शहर में नये-नये आनेवाले अनजान लोग अपने ठिकानों का रास्ता न जानने के कारण भटकने लगते, तो वह उनकी मदद करता और पता-ठिकाना खोजकर उन्हें उनके गंतव्य तक पहुंचा आता, हालांकि ऐसा करने पर कई बार उसे एक ही सामान ढोने में शाम हो जाती.

इस तरह काम करने पर उस आदमी को मेहनत अक्सर ज्यादा करनी पड़ती और मजदूरी थोड़ी ही मिलती, लेकिन मानसिक संतोष खूब मिलता. मन ही मन खुश होकर वह कहा करता, "मैं चाहे बोझ ही ढोऊं, लेकिन गधा नहीं, इंसान हूं."

जितना बोझ वह ढोता था, वे भी अक्सर उसकी इंसानियत से प्रभावित हो जाते. कुछ लोग उसकी प्रशंसा भी कर देते. कहते, "इंसानियत अभी मरी नहीं है भाई, इस आदमी को देखो. . ."

उन्हें शायद मालूम नहीं था कि शहर में कुछ ऐसे लोग लोग भी रहते हैं, जिन्हें यह प्रशंसा चुनौती की तरह बुरी लग सकती है. एक मुंह से दूसरे मुंह जब यह प्रशंसा उन तक पहुंची तो वे बौखला उठे, "इंसानियत का यह नया ठेकेदार कौन पैदा हो गया? हम क्या मर गये हैं?"

उन्होंने उस आदमी का पता लगवाया और उसे अपने पास बुलाया.

CC-0. Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"सुना है, तुम इंसान हो?"
"आपने सुना है, तो शायद ठीक ही सुना होगा."
"मगर तुम तो दूसरों का बोझ ढोते हो!"
"बोझ ढोनेवाला क्या इंसान नहीं हो सकता?"
"हमारा बोझ ढोओगे?"
"क्यों नहीं?...बताइए, कहां चलना है?"
"जाना कहीं नहीं है. तुम्हें एक सामान दिया जायेगा. सुबह तुम उसे अपने सिर पर रखकर निकलोगे और सारे शहर में घुमाकर शाम को हमारे पास पहुंचा दोगे."

वह आदमी उनकी बात का मतलब नहीं समझा. उसने गौर से उन लोगों को देखा. वे कई थे और अपने बड़े-बड़े पेट मानो गोद में रखे, नरम गद्दों पर पसरे हुए बैठे थे. वे भूखे नहीं लगते थे, पर लगातार कुछ न कुछ खा-पी रहे थे.

उसने अपना दिमाग लगाया और कहा, "जब आपको कहीं जाना नहीं है तो अपने सामान को शहर में क्यों घुमाना चाहते हैं? इससे क्या फायदा होगा?"

"फायदा-नुकसान हम देख लेंगे, तुम अपनी मजदूरी देखो. क्या लोगे.?"
"सामान क्या है?"
"देख लो, वह रखा है."

उस आदमी ने इंगित दिशा में देखा. एक बहुत बड़ा बक्सा रखा हुआ था, जिस पर कई नाम लिखे हुए थे. वजन का अंदाजा करने के लिए उसने बक्से के पास जा, उसको उठाकर देखा. बक्से का आकार देखकर उसे लगा था कि बहुत भारी होगा, लेकिन वह तो हाथ लगाते ही कागज की तरह उठ आया. चकित होकर वह आदमी बोला,' 'खाली बक्सा ...?"

"तुम्हें इससे क्या? तुम अपनी मजदूरी बोलो."

वह आदमी पशोपेश में पड़ गया. उसने अपने दिल से पूछा, "क्या करूं?" दिल ने कहा, "किसी का खाली बक्सा सुबह से शाम तक सिर पर उठाये घूमने में क्या तुक है?"

उस आदमी ने अपने दिमाग से पूछा, "क्या करूं?"

दिमाग ने कुछ सोचते हुए कहा, "इसमें कोई चाल मालूम पड़ती है. . .लेकिन तुम्हें क्या? तुमको तो बोझ ढोना है. पचास ढोने से एक ढोना बेहतर. बंधी-बंधायी मजदूरी मिलेगी और काम भी कुछ खास नहीं. . .पर इसमें कोई चाल जरूर है, इसलिए मजदूरी तगड़ी मांगो."

दिल ने कहा, "भाई दिमाग, आज तुम अटक-अटककर क्यों बोल रहे हो? दो-टूक बात क्यों नहीं करते?"

दिमाग ने कहा, "दिल भाई, मैं दुविधा में पड़ गया हूं. कुछ समझ में नहीं आता."

उस आदमी को दुविधा में देख उन लोगों ने कहा, "सोच क्या रहे हो? यह कोई मामूली सामान नहीं है. इंसानियत का बोझ है, जिसे उठाकर हम खुद बरसों तक शहर में घूमे हैं. अंदर से वह बक्सा खाली है तो क्या हुआ, बाहर देखो, इस पर कितने भारी-भरकम नाम लिखे हुए हैं. हमने बरसों तक यह बोझ अपने सिर पर मुफ्त ढोया है."

"मुफ्त ?" वह आदमी चकराया.

"हां, मुफ्त. हम चाहते थे कि इस पर हमारे भी नाम लिखे जायें. और देख लो, अब इस पर हमारे नाम लिखे हैं."

"जब आप इसे मुफ्त ढोते थे, तो पेट कहां से भरते थे?"

"हमारे पास पेट भरने के दूसरे जरिए थे. पेट भरने के लिए काम करना जरूरी तो नहीं. और भी कितने ही तरीके हैं. कुछ नहीं तो आदमी भीख मांगकर भी पेट भर सकता है."

उस आदमी को अपने अनुभव याद हो आये.

उन लोगों ने कहा, "तुम भी अगर हमारेवाले तरीके अपना लो तो इस बोझ को मुफ्त ढोते-ढोते एक दिन इंसान बन जाओगे. इस पर तुम्हारा भी नाम लिख दिया जायेगा."

"मुझे इस खाली बक्से पर अपना नाम लिखवाकर क्या करना है?" उस आदमी ने कहा, "और उन तरीकों को मैं अपनाकर देख चुका हूं. उनमें दिल और दिमाग को बेचना पड़ता है, और पेट भी नहीं भरता. जितना खाओ, उतनी ही भूख बढ़ती जाती है. और भीख मांगने पर तो आदमी दिल-दिमाग से खाली होकर बिल्कुल निकम्मा हो जाता है."

"तो तुम मजदूरी ही करो. बोलो, इस बक्से को रोज शहर में घुमाने का क्या लोगे?"

"लेकिन जब आप लोगों ने अपना बोझ बरसों तक खुद ढोया है, तो अब क्यों नहीं ढोते हैं?"

"अब हमें फुरसत नहीं है. हमने इंसानियत का ठेका ले लिया है, और इस ठेकेदारी में भूख बहुत लगती है. दिन-रात खाते हैं, फिर भी पेट नहीं भरता. हमें खाने से ही फुरसत नहीं मिलती."

उस आदमी ने देखा, उससे बात करते समय भी वे खा-पी रहे हैं. उनकी बड़ी-बड़ी तोंदें देखकर उसे हंसी आ गयी.

उसे हंसते देख उन लोगों ने कहा, "हंसो मत. अपनी इन बढ़ी हुई तोंदों पर हम खुद शर्मिंदा हैं. सत्यानाश हो इनका, इन्होंने हमें कहीं का नहीं छोड़ा. इनके कारण शहर में हमारा चलना-फिरना मुश्किल हो गया है. बाहर निकलते हैं तो ये हमारे आगे-आगे चलती हैं."

उस आदमी को और भी जोर की हंसी आयी.

तब उन्होंने कहा, "अरे, तुम कैसे इंसान हो? शहर के और लोगों की तरह तुम भी हमारी हालत पर हंसते हो? लोगों में जरा भी इंसानियत बाकी नहीं रही. कोई हमारी तकलीफ को नहीं समझता. तुम्हारे बारे में सुना था कि तुम इंसान हो, लेकिन तुम भी हंस रहे हो!"

उस आदमी ने हंसना बंद कर दिया. बोला, "अच्छा, अब मैं समझा कि आप लोग यह बक्सा मेरे सिर पर रखकर क्यों शहर में घुमाना चाहते हैं! मेरा पेट पिचका हुआ है न! लेकिन माफ कीजिए, मैं आपका बोझ नहीं ढो सकता."

इतना कहकर वह आदमी उनके पास से चला गया.

लेकिन अगले दिन जब वह किसी का बोझ सिर पर उठाये उधर से गुजर रहा था, उसने देखा, उस बक्से को ढोने के लिए पिचके पेटवालों की एक भीड़ लगी हुई है और उनमें से कई लोग चिल्ला-चिल्लाकर कह रहे हैं, "हमें दीजिए, हम इसे मुफ्त में ढोने को तैयार हैं!" □

● बी 3/4, राणाप्रताप बाग, दिल्ली-110007

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्वीर बोलती है

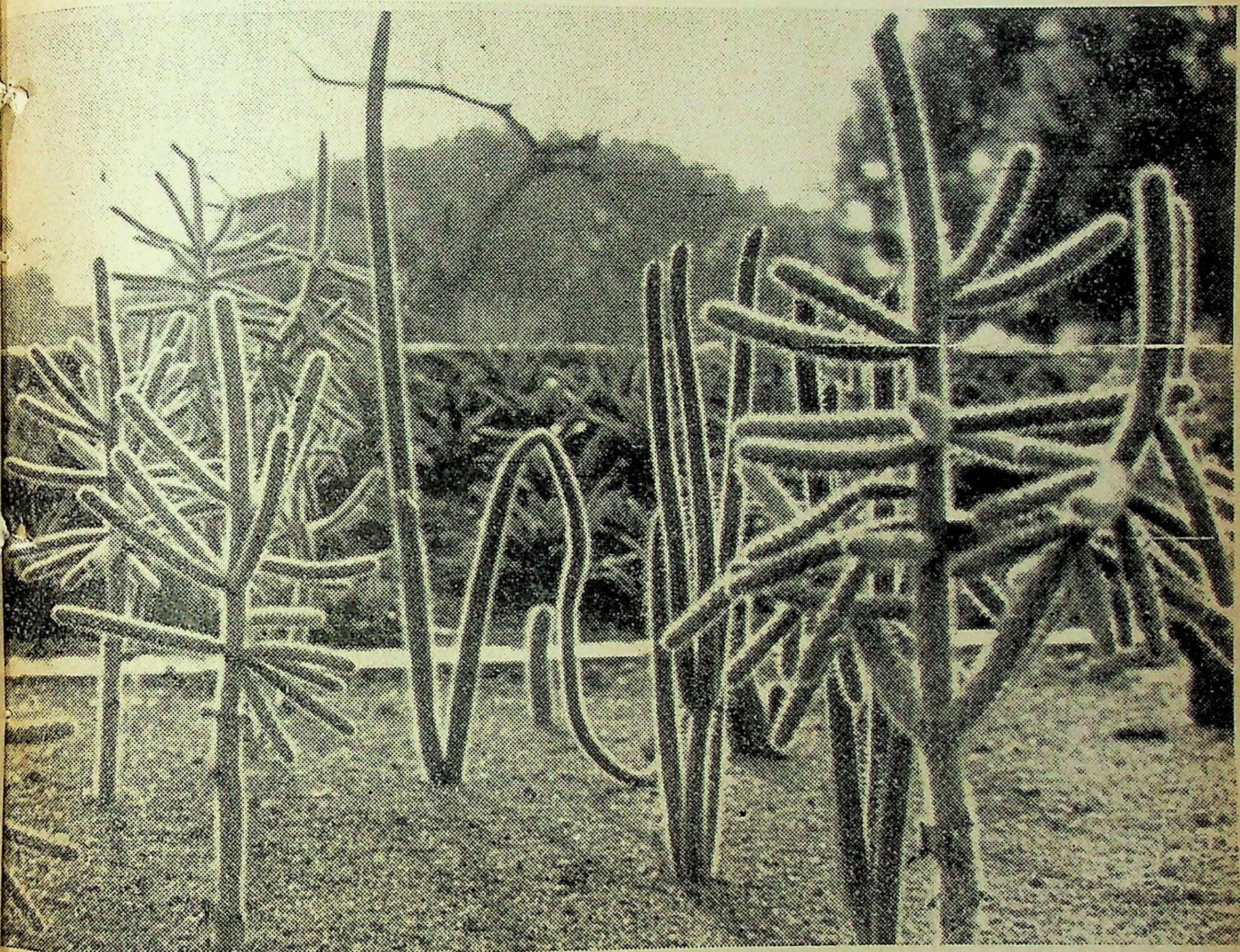

छाया :
योग जाय
द्वारा–ट्रिब्यून, चंडीगढ़

इस चित्र का कोई मनपसंद शीर्षक, पोस्टकार्ड पर अपने नाम-पते सहित 15 मई, 84 तक इस पते पर भेज दें—**संपादक : सारिका (तस्वीर बोलती है : 355, 10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002.** चुने गये तीन शीर्षकों पर क्रमशः 50, 30 और 20 रुपये के नकद पुरस्कार दिये जायेंगे. आप कितने भी शीर्षक भेज सकते हैं, लेकिन हर पोस्टकार्ड पर ऊपर प्रकाशित 'तस्वीर बोलती है' बतौर कूपन चिपकाना आवश्यक है. एक कार्ड पर केवल एक ही शीर्षक भेजें.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

• सॉल बैलो

मिस्टर ग्रीन को ढूंढते हुए

दुनिया के सर्वाधिक समृद्ध देश अमरीका के एक नीग्रो इलाके में एक गरीब बूढ़े, अपाहिज टुलीवर ग्रीन को ढूंढ़ते हुए राहत दफ्तर के एक क्लर्क के अनुभव. . . .नोबेल पुरस्कार विजेता अमरीकी कथाकार की कलम से. . . .

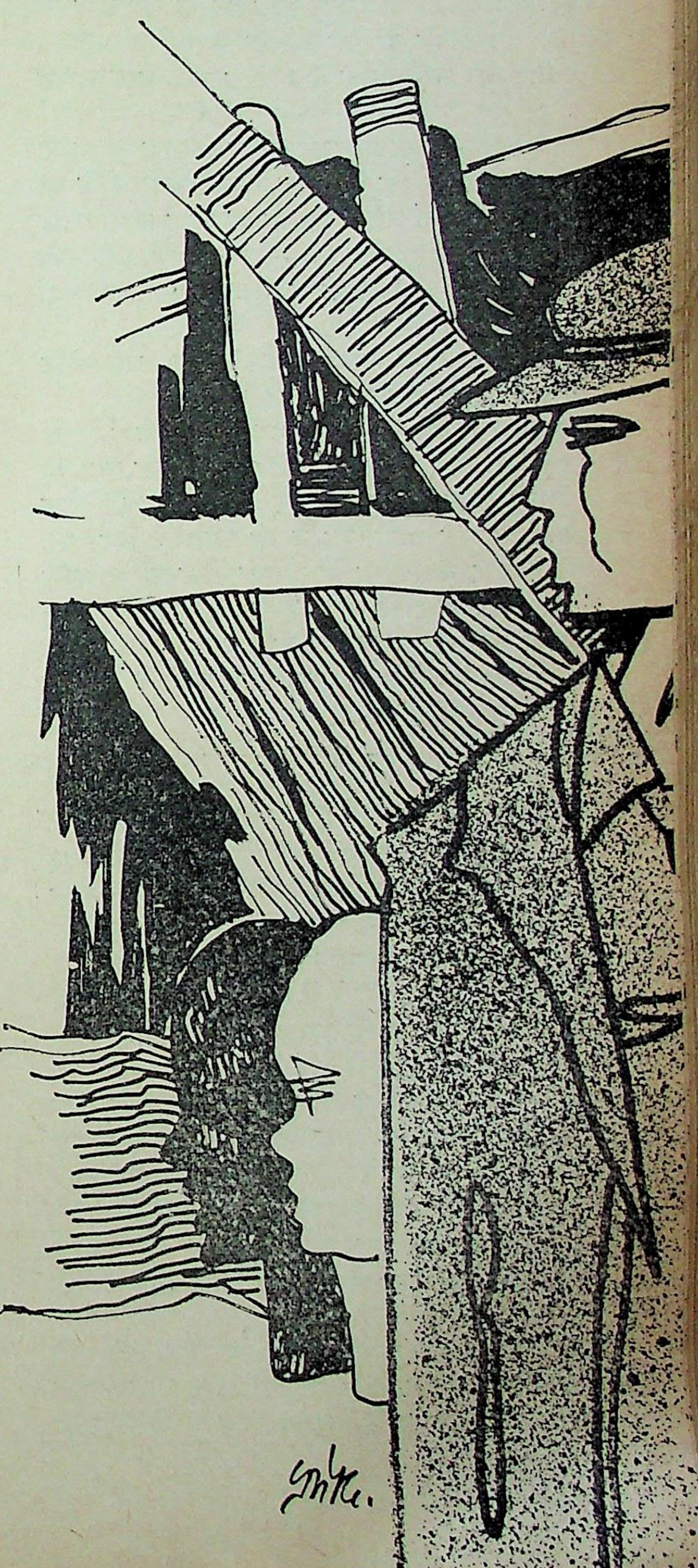

उसे नीग्रो इलाके में राहत-राशि बांटने का काम मिला था. काम ऐसा कोई बहुत भारी नहीं था. हालांकि दूर-दूर तक पैदल चलना और सीढ़ियां चढ़ना-उतरना तकलीफदेह जरूर था, मगर जार्ज ग्रेब को अपनी इस नयी नौकरी में शारीरिक थकान से परेशानी नहीं थी. अपने काम के पहले दिन की सुबह जब उसने ऑफिस में हाजिरी दी थी तो उसे लगा था, वह एक कारकून की कुर्सी पर बैठकर राहत-दफ्तर की दीवारों से घिर जायेगा, किंतु इसके विपरीत जब उसे सड़क पर घूमने का आजाद काम मिला तो वह बड़ा खुश हुआ.

पर शुरू में ही कड़कड़ाती शीत और तीखी हवाओं के थपेड़ों ने उसका स्वागत किया. इसके अलावा राहत-चेक बांटने का काम भी उससे जम नहीं पाया. था तो वह शहरी काम और शहरी काम में तेजी-चुस्ती दिखाना जरूरी नहीं होता. यह बात उसके युवा सुपरवाइजर, मि. रेनोरे ने भी उसे साफ-साफ बता दी थी. फिर भी वह ठीक से काम करना चाहता था. वह सोचता था कि चेकों की एक खेप फुर्ती से खत्म करके वह अपने लिए समय बचा सकता है. मगर उसकी जल्दी के बावजूद अपनी रकम की प्रतीक्षा करके मुवक्किल शेष रह जाते. यह कोई बहुत चिंता की बात नहीं थी, फिर भी उसका असर तो उस पर निश्चित ही होता था. हां, वह ठीक से काम करना चाहता था, महज ठीक-से-काम करने के खातिर, अपने कार्यभार से समुचित बरी होने के लिए. क्योंकि उसे यह एक ऐसा दुर्लभ काम मिला था, जिसमें इसी प्रकार की ऊर्जा की जरूरत थी. यह ऊर्जा उसके पास पर्याप्त थी, एक बार जब वह बहना शुरू होती तो तेजी से बहती ही रहती थी. किंतु यह पहला मौका था, जब कोई अड़चन आयी थी. वह मि. ग्रीन को नहीं ढूंढ़ पाया.

वह अपने लंबे ट्रेंचकोट में समाया हुआ खड़ा था. उसके हाथ में एक बड़ा लिफाफा था. उसकी जेब से बाहर उभरे हुए कागज थे. उसे विस्मय हो रहा था, क्यों उन लोगों का पता खोज लेना इतना मुश्किल है जो कमजोर या बीमार हैं और अपना चेक लेने स्वयं दफ्तर तक नहीं आ सकते. वैसे रेनोर ने उसे बताया था कि शुरू-शुरू में उन्हें खोज निकालने का काम उतना आसान नहीं होगा. उसने उसे एक सलाह भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लघुकथा

ऊंचा पद

▣ गंभीरसिंह पालनी

विदुषी रमा के लिए पंडितजी एक रिश्ता लेकर आये, मैं तब वहीं पर था.

राम के पिताजी की मृत्यु हो जाने के कारण उसके ताऊ घनानंद जी को ही यह विवाह करना था. अतएव उन्हीं से बातें हुईं. लड़का बैंक में आफीसर था. बहुत अच्छा भी था.

राम के ताऊ जी ठहरे कट्टर ब्राह्मण. उन्होंने रमा की मां के सामने ही पंडितजी से कह दिया कि लड़का ऊंची कोटि का ब्राह्मण नहीं है. फिर मैं अपनी भतीजी का ब्याह नीची कोटि के ब्राह्मण से कैसे कर दूं, जब मुझे सारा खर्च खुद ही करना है. बाद में ताऊजी की पंडितजी से अलग में पता नहीं क्या क्या बातें हुईं.

घनानंदजी ने अपनी भतीजी की शादी एक उच्च कोटि के ब्राह्मण मगर साधारण क्लर्क से कर दी.

लगभग एक वर्ष बाद मुझे घनानंदजी की बेटी के विवाह का निमंत्रण मिला. मैं यह देखकर दंग रह गया कि वर तो नीची कोटि का मगर उच्च पदासीन वही ब्राह्मण युवक था. दहेज भी घनानंदजी ने जी खोलकर दिया था.

मुझे देखकर घनानंदजी को लगा मानों उनकी चालाकी पकड़ी गयी. मेरे कान में बोले, "भैया, भतीजी का ब्याह इससे करता तो लोग कहते कि ताऊ ने नीची कोटि के ब्राह्मणों से ब्याह दी. बेटी का ब्याह इससे करने के लिए तो कोई कुछ नहीं कहेगा." □

● आफीसर, नैनीताल बैंक लिमिटेड, माल रोड, नैनीताल

दी थी—"यदि तुम्हें पोस्टमैन मिल जाये तो पूछने के लिए वह बिल्कुल सही आदमी होगा. अगर वह न मिले तो आसपास के दूकानदारों से संपर्क करना. फिर चौकीदार और पड़ोसियों से पूछना. लेकिन तुम अपने मुवक्किल के जितने पास पहुंचोगे, उसके नजदीकी लोग उसके बारे में तुम्हें बताने से कतरायेंगे. दरअसल वे जानबूझकर कुछ भी बताना नहीं चाहेंगे."

"इसलिए कि मैं अजनबी हूं?"

"नहीं, इसलिए कि तुम गोरे हो. इस काम के लिए एक नीग्रो होना चाहिए था, मगर इस वक्त हमारे यहां नहीं है. वे तुम्हें सादी पोशाक में शैतान समझेंगे अथवा कोई किराया-वसूलदार या सम्मन-तलबदार या ऐसा ही कोई. तुम्हारी घनिष्ठता उनसे तब होगी जब तुम कुछ महीनों तक उस इलाके में देखे जाओगे और उन्हें यकीन हो जायेगा कि तुम राहत-दफ्तर के ही आदमी हो."

वही हुआ. कोई भी हां नहीं कर रहा था कि वह ग्रीन को जानता है. तीन बज चुके थे. पोस्टमैन अपनी अंतिम डाक बांट चुका था. नजदीक के नीग्रो दूकानदार ने टुलिवर ग्रीन का नाम कभी नहीं सुना था या शायद वह बताना नहीं चाहता था. ग्रेब अपने मन को तसल्ली दे रहा था, उसने तो दूकानदार को पूरी तरह यकीन दिला दिया था कि वह उस तक चैक पहुंचाना चाहता है और उसे ग्रीन से कोई और मतलब नहीं है. फिर भी वह संतुष्ट नहीं था. वह अपने भीतर उस अनुभव की कमी महसूस कर रहा था जिससे नजरों को, हावभाव को पढ़ा जा सकता था.

अब चौकीदार से पूछना चाहिए. ग्रेब उस नवंबर आखिर के दिन, ठंडी हवा और धुंध को चीरता हुआ एक खस्ताहाल इमारत की ओर बढ़ा.

"क्या तुम ही चौकीदार हो?"

"क्यों? क्या काम है?"

"मैं एक आदमी को ढूंढ़ रहा हूं जो यहीं कहीं रहता है, नाम है ग्रीन."

"कौन ग्रीन?"

"ओह, क्या यहां ग्रीन नाम के दो-तीन आदमी हैं?" ग्रेब आशाभरी ताजा स्फूर्ति के साथ बोला, "मुझे टुलीवर ग्रीन से मिलना है."

"मुझे कुछ नहीं मालूम मिस्टर, मैं किसी ग्रीन को नहीं जानता."

"एक विकलांग आदमी?"

"नो सह! मेरे जिम्मे निगरानी के लिए इस जैसी चार इमारतें हैं. मैं सभी किरायेदारों को नहीं जानता और किराये-दारों-के-किरायेदारों को पहचानता भी नहीं. भाड़े के कमरे इतनी जल्दी-जल्दी बदले जाते हैं कि तकरीबन रोज ही नये लोग आते और पुराने जाते हैं. मैं कुछ नहीं बता सकता."

"ठीक है, कोई बात नहीं, धन्यवाद. माफ करना. मैंने तुम्हें कष्ट दिया. मैं ऊपर खोजता हूं. शायद कोई मिल जाये." उसने ऊपर चढ़नेवाले जीने के द्वार तक पहुंचने के लिए बीच में पड़े ईंटों के ढेर का एक छोटा चक्कर लगाया और चौथी मंजिल की ओर बढ़ा. प्लास्टर के टुकड़े उसके जूतों के नीचे चरमरा रहे थे, जीने के किनारों पर पीतल की पट्टियां बची थीं जो उस पर पुराने समय में बिछे कालीन का अवशेष थीं. वह गलियारे में पहुंचा जहां उसे सड़क से भी ज्यादा सर्दी महसूस हुई. उसकी हड्डियां कंपकंपा उठीं. बाथरूमों के नल तेज फव्वारे छोड़ रहे थे. उसे भट्ठी की आवाज की तरह ही इमारत को लपेटकर गर्माती हवाओं की भर-भराहट सुनाई दे रही थी. वह मुंह बिचकाता हुआ सोचने लगा—वास्तव में यह एक महान छत्रछाया की बनावट है. उसने माचिस जलायी और दीवारों पर उकेरी हुई लिखावटों और खरोंचों में नाम तथा नंबर खोजने लगा. आड़ा-टेढ़ा लिखा था 'हुडी डूडी गो टु जीजस.' अजीबोगरीब चित्रकारियां थीं. यौन कुलेख और गालियां थीं.

उसके कार्ड पर अंकित था—टुलीवर ग्रीन, अपार्टमेंट 3 डी. कोई अन्य नाम या नंबर नहीं था. उसने कंधे उचकाये. ठंड से उसके नथुनों में पानी भर आया. मुंह से भाप निकल रही थी. वह गलियारे में आगे बढ़ा, और अपने से बोलने लगा; यदि उसका स्वभाव वैसा होता वह दरवाजों को धड़धड़ाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ पुकारता जाता 'टुलीवर ग्रीन! टुलीवर ग्रीन!' कहीं से तो जवाब आता. मगर उसके मिजाज में शोर मचाना शामिल नहीं था. वह तीलियां जला-जलाकर दीवारों को उजालता गया, पीछे दालान के एक कोने में उसे एक दरवाजा मिला जिसे उसने पहले कभी नहीं देखा था. उसने उसे तलाशने की कोशिश की. उसने दस्तक दी. कोई जवाब नहीं आया. फिर एक जवान महिला की आवाज सुनाई दी. वह एक निगर किशोरी थी. उसने दरवाजे की दरार में से ही पूछा, "कहिए?"

"मैं प्रेयरी एवेन्यू के डिस्ट्रिक्ट रिलीफ स्टेशन से आया हूं. मैं एक आदमी, टुलीवर ग्रीन को खोज रहा हूं. मुझे उसे राहत-राशि का चेक देना है. क्या आप उसे जानती हैं?"

"नहीं," वह नहीं जानती. मगर ग्रेब ने सोचा जो उसने कहा, वह उसे समझ नहीं पायी है. उसका चेहरा स्वप्निल और स्वप्नांध था—कोमल और श्याम, असंपृक्त. वह एक मर्दाना जैकेट पहने थी जो गले तक बंद था.

"यहां कोई ऐसा आदमी होगा जो उसे जानता हो?"

"मैंने यह कमरा अभी पिछले हफ्ते ही लिया है."

व्यंग्यचित्र : शौकीन गोयल

उसने देखा, वह कंपकंपायी, मगर उसका कंपन भी स्वप्नमय था और उसके खूबसूरत चेहरे पर बड़ी-बड़ी स्निग्ध आंखों में सर्दी का कोई पैना प्रतिबोध नहीं था.

"ठीक है, मिस, थैंक यू. थैंक्स." उसने कहा और दूसरे स्थान को टटोलने के लिए बढ़ा.

वहां उसे भीतर जाने की अनुमति मिल गयी, वह कृतज्ञ हुआ क्योंकि कमरा गर्म था. वहां कई लोग थे. उसके अंदर प्रवेश करते ही वे चुप हो गये. हालांकि उसे उनसे मुस्कानों और भले इरादों का अभिवादन मिला, पर वह जानता था—हां, बगैर बातचीत के वह जानता था—कि सारे प्रवाह उसके विरुद्ध हैं, और वह कोई नतीजा नहीं निकाल पायेगा. फिर भी वह आगे बढ़ा, "क्या यहां कोई मुझे बता सकता है, मैं किस तरह यह चेक मिस्टर ग्रीन को पहुंचाऊं?"

"ग्रीन?" जो आदमी उसे भीतर लिवा ले गया था, वह बोला. वह आधी बाहों वाली चेक की कमीज पहने था. ललाट से आती हुई शिराएं उसके अद्भुत, ऊंचे, फौजी टोप की तरह लंबे सिर में प्रवेश कर रही थी. "मैंने यह नाम कभी नहीं सुना. क्या वह यहीं रहता है?"

"दफ्तर से मुझे यहीं का पता दिया गया है. वह बीमार आदमी है. उसे इस चेक की जरूरत होगी. कोई उसका अता-पता बता सकता है?"

वह वहीं हाथ बांधकर खड़ा रहा और जवाब की प्रतीक्षा करने लगा. लाल ऊनी स्कार्फ उसके गले पर से घिरता हुआ ट्रेंचकोट के बाहर लटक रहा था. सरकारी फार्मों और चेकों के बंडलों के भार से उसके पाकेट उभर आये थे. उन्होंने समझ तो लिया होगा, वह किसी मकान मालिक के द्वारा संध्याकालीन नौकरी पर लगाया गया कालेज का छोकरा नहीं जो राहत-क्लर्क का स्वांग बनाकर उनकी छाती पर आ खड़ा हुआ हो. वे उसका यकीन कर सकते हैं कि वह एक समझदार आदमी है और दूसरे के दुख को समझता है. उसकी आंखों के नीचे और मुंह के किनारे के निशान इस बात का प्रमाण हैं कि उसने भी औकात से कुछ ज्यादा ही तकलीफ उठाकर खुद को पकाया है.

"क्या कोई इस रुग्ण आदमी को जानता है?"

"नो सह्!" उसने चारों ओर नकार में हिलते हुए सिर और भीनी मुस्कानें देखीं.

"तो कोई नहीं बता सकता?"

"यहां कोई नहीं जानता."

"वह रहता तो यहीं है. किसी को किराया तो देता होगा? इस इमारत की देखरेख कौन करता है?"

"ग्रेथम कंपनी. वह थर्टी नाइंथ स्ट्रीट पर है."

ग्रेब ने अपने पैड पर नोट किया. वह फिर सड़क पर था. हवा में उड़ता हुआ एक कागज उसके पैर पर लिपट गया था और वह इस उधेड़बुन में था कि अब किस दिशा में घूमे. उसका असमंजस बना रहा. शायद ग्रीन ने कोई फ्लैट किराये पर न लिया हो. वह एक कमरे में ही रह रहा हो. कहीं-कहीं तो एक ही अपार्टमेंट में बीस-बीस जन रहते हैं. मकान मालिक तो सिर्फ मूल किरायेदार को ही जानता होगा. उसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दलाल तक को नहीं मालूम होगा, किरायेदारों के कौन-कौन किरायेदार हैं. कहीं-कहीं तो बिस्तरे तक पाली से इस्तेमाल होते हैं. काटेज ग्रव और ऐशलैंड के दरमियान बसे शहर के भयानक झुलसे हुए इस रहस्यमय इलाके में सैकड़ों नये लोग आते रहते हैं जो घर-घर और कमरे-कमरे घूमते रहते हैं. उन्हें देखकर कैसे जाना-चीन्हा जा सकता है? उनके कंधों पर कोई बैग नहीं होते और वे चित्ताकर्षक भी दिखाई नहीं देते. परिदृश्य में दिखता है केवल आदमी, एक नीग्रो. सड़क पर चलता हुआ या बस पर चढ़ता हुआ और उसकी बंद मुट्ठी और वह किसी भी अन्य आदमी की तरह ही होता है. कैसे जाना जाये उसे? ग्रेब सोचने लगा कि ग्रेथम-एजेंट उस पर हंसेगा.

मगर बात आसान हो जाती अगर वह दावे से कह सकता ग्रीन बूढ़ा है या अंधा अथवा टी. बी. का मरीज. अगर वह फाइल पर एक घंटा खर्च करके कुछ नोट कर लेता तो इतनी परेशानी नहीं होती.

ग्रेब को इस नौकरी के लिए लंबी प्रतीक्षा करनी पड़ी थी. इसके लिए उसके एक पुराने सहपाठी ने सिफारिश की थी जो कारपोरेशन कौंसिल आफिस में काम करता था. वह उसका नजदीकी दोस्त नहीं था, मगर उसके बारे में एकाएक हमदर्द हो गया था. ग्रेब सिटी हॉल में उससे मिलने जाता था और वे काउंटर पर ही, कम-से-कम महीने में एक बार, लंच खाते. और, आखिर एक दिन उसे यह नौकरी मिल गयी. उसे इस बात का कोई रंज नहीं हुआ कि उसे सबसे निचली क्लर्की मिली और कि उसे मैसेंजर का काम दिया गया, हालांकि रेनोर तो यही समझा कि उसे अफसोस हुआ होगा.

ये रेनोर असली नमूने का आदमी था. ग्रेब शीघ्र ही उसके साथ हिल गया. जैसा कि अपेक्षित ही था, ग्रेब पहले दिन समय पर पहुंचा और रेनोर लेट आया था. लड़खड़ाती रेड इंडियाना गाड़ी में से कूदकर उतरता हुआ वह ऑफिस के अपने कक्ष में दाखिल हुआ था.

"मैं उम्र में तुमसे छोटा हूं मगर आशा करता हूं, तुम्हें मुझसे आदेश लेने में बुरा नहीं लगेगा," रेनोर ने कहा था, "हालांकि मैं खुद ही आदेश नहीं देता हूं. . .तुम्हारी उम्र क्या है, तकरीबन?"

"पैंतीस."

"और तुम सोचते होगे, तुम दफ्तर में बैठकर मजे-से फाइल निपटाने का काम करोगे. मगर बात यह है कि मैं तुम्हें बाहर का काम दे रहा हूं."

"कोई बात नहीं."

"और इस क्षेत्र में अधिकतर निगरों के काम की ही भरमार है."

"मैंने वैसा ही सोचा था."

"तुम पहले क्या करते थे?"

"सामान बेचता था."

"कहां?"

"स्टॉप पर और दूकान पर. तलघर में."

"उसके पहले?"

"गोल्ड ब्लेट की शो-विंडो पर कपड़े लटकाता था."

"पढ़ाई-लिखाई?"

"कुछ नहीं, वृहस्पति और शनिवार को जूते बेचता था."

"तो तुम एक चमरवे भी रहे हो. ठीक, और उसके पहले? ये तुम्हारी अर्जी में क्या लिखा है," वह फाइल खोलता है, "सेंट ओलफ कालेज में क्लैसिकल भाषाओं का इंस्ट्रक्टर. फैलो, शिकागो विश्वविद्यालय 1926-27. तुम्हें लेटिन पढ़ने की कैसे सूझी? पादरी बनना चाहते थे?"

"नहीं."

ठीक उसी वक्त एक महिला जो रेनोर के सेक्शन में काम करती थी, उसके कमरे में दौड़ती आयी थी, "मि. रेनोर, जानते हैं, यह शोर कहां हो रहा है!"

"नहीं तो?"

"वह स्ताइका है न, जोरों से चीख रही है. रिपोर्टर आ रहे हैं, उसने अखबारवालों को फोन कर दिया है. वह सच कह रही है."

"पर उसे क्या तकलीफ है?" रेनोर बोला.

"वह अपने धुले कपड़े यहां लाकर उन्हें इस्तरी कर रही है, अपनी बिजली से, क्योंकि राहतवाले उसे बिजली का पैसा नहीं देते. उसने डेस्कों को जोड़कर इस्तरी करने का ठीहा बना लिया है. उसके बच्चे उसके साथ हैं, पूरे छह. वे पहले हफ्ते के बाद कभी स्कूल नहीं गये. वह हमेशा उन्हें अपने पीछे लिये चलती है क्योंकि उन्हें छोड़कर जाये तो घर में कुहराम मच जाये."

"चलो, चलें देखें." रेनोर उचकता हुआ चिल्ला पड़ा. ग्रेब उसके पीछे चलता हुआ बोला, "ये स्ताइका कौन है." एक और बाबू उसके पीछे आ रहा था.

"वह अस्पतालों में खून बेचती है. वे शायद उसे एक पिंट का दस डालर देते हैं. ये कोई मजाक नहीं है. काफी कमा लेती है वह. वह और उसके बच्चे अक्सर अखबारों में छपते रहते हैं."

एक छोटी-सी भीड़, कर्मचारी और मुवक्किल प्रवेश-द्वार के पास प्लाईउड-पार्टीशन के आरपार, और स्ताइका ठीहे पर इस्तरी ढकेलती और चिमटे पर ठोककर टिकाती हुई कर्कश उजड्ड आवाज में चिंघाड़ रही थी :

"मेरे माता-पिता जहाज पर चढ़कर यहां आये लेकिन मैं अपने ही घर में पैदा हुई थी. हुरोन के पास रोबी में. मैं कोई गंदी प्रवासिन नहीं हूं. मैं एक अमरीकी नागरिक हूं. मेरा फ्रांसीसी पति एक कुशल कारीगर रहा है. गैस-कंपनी में काम करते-करते जहरीली हवा की मार खा गया. फेफड़े ऐसे पापड़ हो गये कि वह पाखाने तक खुद अकेला नहीं चल सकता. ये मेरे छह बच्चे, इनके पैरों के लिए मुझे अपने खून से जूते खरीदने पड़ते हैं. एक चलताऊ नेकटाई का भी मतलब हुआ खून की कुछ बूंदें, मेरी वाज्दा के लिए, हां, अपनी सहेलियों के बीच चर्च में उसे नीचा नहीं देखना पड़े इसलिए, मैं उसके हैटकवर की नेट का टुकड़ा खरीदती हूं और वे उसके खातिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लघुकथा

कोशिश

▣ यश खन्ना 'नीर'

मजदूरी करके पेट पालना चाहा तो शोषण का पिशाच उस वृद्ध की हड्डियां नोचने दौड़ा. भूख और बेकारी से क्षुब्ध वह जर्जर शरीर विवश होकर भीख मांगने लगा. कुछ दिन तक टुकड़े मिलते रहे फिर दुत्कार मिलने लगी तो ग्लानिग्रस्त वृद्ध ने एक दयालु नेता के महल का द्वार खटखटाकर अपनी आखिरी कोशिश के तौर पर कह दिया, "साहब, भूख से मैं किसी भी पल मर सकता हूं. मुझे कोई काम दिला दीजिए."

मगर उत्तर, उत्तर नहीं था, प्रश्न था, "नौकरी किस-किसको दिलवाऊं?"

बूढ़ा व्यक्ति तिल-तिलकर मरना नहीं चाहता था, सो मन मजबूत कर रेल की पटरी पर आ बैठा.

उसे आत्महत्या का दुःसाहस करने के अपराध में धर लिया गया. न्याय-मंदिर से प्रसाद-स्वरूप उसे एक माह का कारावास मिला.

जेल में भोजन नियमपूर्वक मिलने लगा. बरसों की भूख मिट गयी.

भोजन-पर्व समाप्त हुआ और रिहाई का दिन आ गया.

कारागार से मुक्ति के समय जेलर ने रटा-रटाया उपदेश दिया, "बाहर जाकर जीने की कोशिश करो."

एक विश्वासपूर्ण मुस्कान सफेद पड़े होंठों पर लाते हुए उस वृद्ध ने उत्तर दिया, "आप चिंता न कीजिए साहब, अब मैं कम-से-कम भूखा नहीं मर सकता."

"लेकिन तुम जाओगे कहां?" जेलर के इस प्रश्न पर वृद्ध ने उस की आंखों से आंखें मिलायीं, मुस्कराया, हाथ जोड़े और बाहर चला आया.

थोड़ी देर बाद. . . वह रेल की पटरी पर बैठा था. □

● 7925-ए/4, अंबाला शहर

भी गोल्ड ब्लाट से खून खींच लेते हैं. मैं इसी तरह जी रही हूं. फिर मुझे राहत से भरपूर पैसा क्यों नहीं मिलता? हजारों को मिल रहा है. वे सब मजे से स्विफ्ट एंड आर्मर शॉप जाकर गोश्त खरीद लाते हैं. कौन-सी चीज है जो उन्हें नहीं मिलती? वे यार्ड्स में जाकर माल खरीदते हैं. उन्हें कभी काम से निकाले जाने का सवाल ही नहीं उठता. वे मजे में अपने घिनौने विस्तरों पर पड़े रहकर सार्वजनिक धन का उपभोग करते हैं." नीग्रो लोगों ने घने बसे हुए उस रिलीफ-स्टेशन पर नीग्रो लोगों के बारे में ही खुला-खुला चिल्लाते वक्त उसे जरा भी डर नहीं लग रहा था.

ग्रेब और रेनोर उस महिला को साफ देखने के लिए अन्य लोगों को धकियाते हुए आगे बढ़ आये. वह गुस्से से उफन रही थी.

चीफ सुपरवाइजर मि. ईविंग अपना गंजा सिर लि[...] अपने कर्मचारियों के बीच हाथ बांधे खड़े रिटायर्ड स्कूल प्रिंसिपल की तरह अपने मातहतों से कह रहे थे, "थोड़ी देर [...] वह थक जायेगी और चली जायेगी."

"वह नहीं जायेगी," रेनोर ने ग्रेब से कहा था. वह अपनी जरूरत की चीज लेकर ही हटेगी. वह राहत राशि के बारे [...] ईविंग से भी ज्यादा जानती है. वर्षों से उसका नाम भुगतान रजिस्टर में दर्ज है और वह हमेशा धमा-चौकड़ी मचाकर अपनी राशि बढ़वा लेती है. ईविंग जानता है फिर भी व[...] झुक जायेगा. वह सिर्फ मुंह छिपा रहा है. और अगर अखबार ने उसके खिलाफ कुछ छाप दिया तो कमिश्नर उसकी खटिया खड़ी कर देगा. उसने उसकी हेकड़ी भुला दी है. वह थोड़ी [...] देर में सबको खींच देगी, हां, पूरे देश को और सारी सरकार को भी."

ग्रेब अपनी विशिष्ट मुस्कान मुस्कराया. उसने उसक[...] बात को एकदम टाल दिया. . .कौन स्ताईका के आदेश [...] मानता है? उसकी गरगराहट से कभी कुछ बदला भी है[...]

मगर हां; ग्रेब ने उसमें एक ताकत देखी जो लोगों [...] उसकी बात सुनने को मजबूर कर रही थी. उसकी ची[...] रग-रग की लड़ाई व्यक्त कर रही थी. वे आवाजें कुछ सन[...] भरी और उजड्ड जरूर थीं, मगर इस जगह पर, और इ[...] हालातों में ऐसा होना ही था. और जब वह बाहर निकल[...] था तो शुरू-शुरू में सारे इलाके में उठती हुई स्ताईका [...] उत्तेजना उस पर छायी थी और सारा क्षेत्र उसमें गूंज गया था. उसने उसका आब देखा था, उसकी उत्तेजना रंग-बिरंग[...] वक्रिल ज्वालाओं में हवन की ज्वालाओं के साथ लपटों [...] विषाद में घुल रही थीं. बाद में भी जब वह राई के स्व[...] के लिए एक मधुशाला में बीयर चखने गया था तब भी वे[...] साइड पोलिश स्ट्रीट को देखकर उसे फिर उसका खया[ल] आया था.

उसने अपने मफलर के सिरों से मुंह पोंछा. उसे पैंट [...] भीतर दबा अपना रूमाल निकालने में तकलीफ हो र[ही] थी. वह फिर से चेक बांटने के लिए बाहर निकल आया. ह[वा] तीखी और काटती हुई थी. उसके समीप बर्फ के कुछ क[...] जम गये थे. एक ट्रेन फकफकाकर निकल गयी. दीवारों में [...] कंपन हुआ. रेल पटरियों पर एक फरफराहट सरसरायी.

स्ट्रीट पार करके वह लकड़ी की निसैनी से उतरता हु[आ] एक पंसारी की दूकान में घुसा. उसने एक घंटी दबायी. [...] स्टोअर में अंधेरा था. धुआंसे--गोश्त, साबुन, सूखे आड़ू, [...] मछली की बू उठ रही थी. एक छोटे-से स्टोव के ऊपर [...] फफक-भभक रही थी. दूकानदार ग्राहक की प्रतीक्षा में ख[ड़ा] था. एक इतालवी, लंबा खोखला चेहरा, सख्त खसख[सी] दाढ़ी. वह एप्रन तले अपने हाथों को गर्म रखे हुए था.

नहीं. वह ग्रीन को नहीं जानता. लोगों को जाना जा सक[ता] है, नाम को नहीं. एक ही आदमी दो बार वही नाम न[हीं] बोलता. पुलिस वाले भी नहीं जानते और वे परवाह भी न[हीं] करते. जब कोई गोली से उड़ा दिया जाये अथवा चाकू से क[...]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या जाये तो वे लाश ले जाते हैं, हत्यारे को नहीं खोजते. ले तो कोई उन्हें कुछ भी नहीं बतायेगा. फिर वे पोस्ट-र्टम वालों के लिए नाम लिखायेंगे––गुमनाम. और दूसरी र वे उधर झांकेंगे भी नहीं. वे चाहकर भी बात की तह तक हीं जाते. कोई रत्ती भर कोशिश नहीं करता इन लोगों दरमियान क्या झगड़ा चलता रहता है. वे चाकू चलाते चोरी करते हैं, हर तरह के गुनाह और जघन्य कुकृत्य करते ––आदमी और आदमी, औरत और औरत, मां-बाप और च्चे, सब के सब, आपस में भी, जानवर से भी बदतर. अपने ही तौर-तरीकों से चलते हैं और आतंक धुएं की तरह जाता है. ऐसा तो दुनिया के इतिहास में कभी नहीं हुआ...

यह एक लंबा संभाषण था. जिसका हर शब्द उसकी ासी और पैशन में डूबता हुआ अर्थहीन और भयावह ता जा रहा था.

ग्रेब ने सोचा, उसके भाषण को टोका जाये. उसने तेजी कहा, "यह तुम क्या कह रहे हो? मैंने सिर्फ इतना ही पूछा कि क्या तुम उस आदमी को जानते हो."

"मैंने तो अभी तुम्हें सिर्फ आधी बात बतायी है. मैं यहां साल से हूं, तुम्हें यकीन नहीं होता? मगर सुनो, यह सच जो मैंने कहा, वह पूरा का पूरा सच है."

"ठीक है, ठीक है," ग्रेब कहता है, "किसी आदमी को ने का कोई तरीका होना चाहिए."

इतालवी की सिकुड़ी हुई आंखों का विस्मय और घना ता चला गया. उसकी मांसपेशियां फूलने लगीं. वह काउंटर झुका और ग्रेब को समझाने लगा. फिर उसने अपनी कोशिश ड़ दी और स्टूल पर बैठ गया. "ओह, ग्रीन? शायद! ाध बार देखा होगा. पर मैंने कहा था न कि पुलिस वाले कुछ खोज नहीं पाते."

"वे तो किसी के पीछे पड़े होते हैं. उनकी बात अलग है."

"अच्छा, तो ढूंढो. मुझे कुछ नहीं मालूम."

पर उसने ढूंढना बंद कर दिया. उसके पास ग्रीन पर खर्च ने को ज्यादा वक्त नहीं था. उसने ग्रीन का चेक बंडल के छे खिसका दिया. अगला नाम था––विन्सटन फील्ड.

से बंगले का पिछवाड़ा बड़ी आसानी से मिल गया. वह मकान के एक हिस्से में रहता था. आंगन दो घरों दरमियान बंटा था. ग्रेब पार्टीशन वाली व्यवस्थाओं से कफ था. दलदल को भरने और सड़कें बनाने के पूर्व ही कान बन चुके थे और थे भी वैसे ही––फेंस तक पटियों चलो, जो स्ट्रीट-तल से बहुत नीचे दलदल पर बिछे होते, तीन या चार नंगे तार जो कपड़े सुखाने के लिए होते, काई-जमी ईंधन-लकड़ी, पटियों की बेंचें, अंधी नाम-यां और पिछवाड़े के दरवाजे तक पहुंचती लंबी-लंबी ानियां.

एक बारह वर्षीय बालक उसे किचिन की ओर ले जाता वहां व्हीलचेयर पर एक बूढ़ा आदमी टेबल के पास बैठा ा है.

"ओह. सरकारी आदमी हैं," वह बोला. ग्रेब चेक निकाल रहा था. "जरा मेरी फाइलों का बक्सा लाओ," उसने लड़के से कहा और टेबल पर रखी चीजों को एक ओर खिसकाया.

"कोई जरूरत नहीं है," ग्रेब ने कहा. मगर फील्ड ने अपने कागजात फैला दिये. सोशल सिक्यूरिटी कार्ड, रिलीफ सर्टिफिकेट, मान्टेनो के सरकारी दवाखाने के पर्चे, नेवल डिस्चार्ज फार्म दिनांक सान डिआगो 1920.

"बहुत है," ग्रेब बोला, "बस यहां दस्तखत कर दो."

"तुम्हें मालूम होना चाहिए, मैं कौन हूं". बूढ़ा बोला; "तुम सरकारी मुलाजिम हो. यह तुम्हारा नहीं, सरकारी चेक है और तुम्हें कोई हक नहीं कि तुम बिना जांचे-परखे इसे किसी को भी दे दो."

ग्रेब ने कोई आपत्ति नहीं की. उसे सारा प्रदर्शन आनंदायक लगा. फील्ड ने कार्डों और खतों के पत्तों से भरे बक्से को उलट दिया.

"ये सब कुछ जो सामने है, वो मैं हूं, मेरा काम है. बस सिर्फ मृत्युपत्र नहीं है ताकि मेरा हिसाब बंद कर दिया जाये." उसने अंतिम वाक्य को मस्ती भरे स्वाभिमान और भव्यता के साथ कहा.

फिर, उसने रसीद हाथ में ली और उस पर दस्तखत बनाये. उसने स्लिप को अपनी उंगलियों की जोड़ में कुछ देर थामे रखा ताकि स्याही सूख जाये. मेज हिली और चरमरायी. उस पर बीच में बिखरे पड़े धुंधले ब्रे-स्लाइस, गोश्त के टुकड़े, चटनियों के टिन और कागज के पुलिंदे कंपकंपाये.

अभी छह चेक बचे थे और उसने ठान रखी थी कि उसमें से कम-से-कम एक चेक––मि. ग्रीन का चेक––वह जरूर डिलीवर करेगा.

इस बार वह तीसरी मंजिल पर रुका. उसने तीली जलायी. एक द्वार खटखटाया. एक आदमी स्वयं सामने आ खड़ा हुआ. ग्रेब ने चेक हाथ में ही थाम रखा था. उसके कुछ भी बोलने के पूर्व ग्रेब उगल पड़ा, "क्या टुलीवर ग्रीन यहीं रहता है? मैं राहत-दफ्तर से आया हूं."

कपाट पुनः आधा बंद करते हुए आदमी ने अपने पीछे देखा और किसी से पूछा, "क्या यहां कोई ग्रीन रहता है?"

"ऊं हूं! नहीं."

"इस बिल्डिंग में कहीं और रहता है? वह बीमार है और अपनी रकम लेने दफ्तर नहीं आ सकता स्वयं." उसने धुआंसी रोशनी के पास लाकर चेक दिखाया– हवा में अधजले गोश्त की बू आ रही थी. आदमी ने हैट की किनार अपने हाथ में थाम रखी थी. उसने चेक की ओर ध्यान से देखा.

"शायद, शायद एक आदमी है, हो सकता है वही हो, बूढ़ा-सा है. थोड़ा कुबड़ा है. मैंने एकाध बार देखा है. क्या मालूम वही हो जिसे तुम खोज रहे हो. नीचे कहीं रहता है.

"कहां? दाहिने खंड में? कौन से दरवाजे के भीतर?"

"यह कुछ नहीं मालूम. सूखा चेहरा, कुबड़ा-कुबड़ा हाथ में लकड़ी."

किंतु दूसरे तल्ले पर किसी ने भी द्वार पर दी गयी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दस्तकों का जवाब नहीं दिया. तीलियों की रोशनी के सहारे वह गलियारे के सिरे तक चला गया. नीचे एक आंगन था. गलियारे के रेलिंग से उस आंगन में उतरने के लिए कोई सीढ़ियां नहीं थीं. नीचे करीब छह फुट की कुदान थी. मगर वहां सटा हुआ एक बंगला था. मि. फील्ड के पुराने घर-सा. कूदने में जोखिम था. वह मुख्य द्वार की ओर लौटा. तल के पैसेज से चलता हुआ उस आंगन में आया. वहां कोई रहता था. ऊपर पर्दों के पास निकलती हुई धुंधली रोशनी दिखाई दे रही थी. टूटे-फूटे बेलचीनुमा पोस्टबाक्स पर लगे नामपट पर लिखा था 'ग्रीन'. वह बागबाग हो गया. उसने घंटी दबायी और द्वार धकियाया. सामने एक लंबी सीढ़ी ऊपर की ओर जा रही थी. कोई नीचे उतर रहा था--एक औरत. धुंधली रोशनी में उसे लगा जैसे नीचे आते-आते वह अपने बाल संवार रही है, जैसे कि अपने को आगंतुक के सम्मुख प्रस्तुत करने से पूर्व व्यवस्थित कर रही हो, क्योंकि ग्रेब ने उसे हाथ उठाते देख लिया था. मगर वे हाथ सहारे के लिए ऊपर उठे हुए नहीं थे, वह नीचे उतरने के लिए पैरों को सरका-सरकाकर सीढ़ियां टटोलती हुई लड़खड़ा रही थी. उसकी पगथलियों पर उसके शरीर के अजीब भारी जोर को देखकर ग्रेब भौंचक हुआ. उसने नजरें गड़ायीं. वह नंगे पैर थी और सीढ़ियां बर्फ-सी थीं. उसकी घंटी ने शायद उसे बिस्तर से उठा दिया और वह चप्पलें पहनना भूल गयी. मगर वह सिर्फ नंगे पैर ही नहीं, वस्त्रहीन भी थी, अलफ नंगी. वह नीचे उतरते हुए अपने ही से बतिया रही थी. एक भारी-भरकम औरत, नंगी और नशे में धुत. वह ठीक उसके सामने डगमगायी.

वह बोला, "क्या मि. ग्रीन यहीं रहते हैं?"

मगर वह अपने ही से बोलती रही. उसने ग्रेब का सवाल नहीं सुना.

"क्या यह मि. ग्रीन का घर है?"

आखिर उसने उफनती हुई नशीली नजरें उसकी ओर खींचीं, "तुम्हें क्या काम है?"

पुनः उसकी आंखें ग्रेब पर से हटकर कहीं और फिर गयीं, उनकी गुस्सैल चमक में खून का एक बिंदु था. वह चकित था कि इतनी ठंड का महिला पर कोई असर नहीं था.

"मैं राहत-दफ्तर का कारिंदा हूं."

"ऑराइट! तो?"

"मुझे टलीवर ग्रीन को उनका चेक देना है." इस बार उसने ग्रेब की बात को ठीक से सुना और अपना हाथ बढ़ा दिया.

"नहीं, नहीं. यह मि. ग्रीन के लिए है. उन्हें दस्तखत करना होगा," ग्रेब बोला. क्या आज रात उसे ग्रीन मिलेगा ही नहीं?

"मुझे दे दो, वह नहीं ले सकता."

उसने निराश होकर अपना सिर नकार में हिलाया. उसे उस क्षण मि. फील्ड की शिनाख्त करने के लिए जरूरी सावधानियों की याद आयी.

"इसे मैं आपको नहीं दे सकता. यह उन्हीं के लिए है. क्या आप मिसेज ग्रीन हैं?"

"हो भी सकती हूं, नहीं भी हो सकती हूं. किसी को क[illegible] मतलब?"

"क्या वह ऊपर हैं?"

"ऑराइट. तुम खुद ही दे दो उसे जाकर. मूर्ख कहीं के!"

बिल्कुल. वह एकदम ही मूर्ख था. बहरहाल, वह ऊ[illegible] नहीं जा सकता था. क्योंकि ग्रीन भी पिये हुए होगा, अ[illegible] नंगा भी. क्या मालूम वह अभी हाल नीचे उतरता हु[illegible] चला आये? उसने उत्सुकता से ऊपर देखा. रोशनी के नी[illegible] संकरी भरी दीवार थी. खाली-खाली.

"तो भाड़ में जाओ!" वह चीखी. कोयलों और कप[illegible] के वास्ते चेक देने के लिए वह उससे सर्दी में प्रतीक्षा कर[illegible] रहा था. उसे तो सर्दी नहीं लग रही थी, किंतु ग्रेब का चेह[illegible] कोहरे और आत्मग्लानि से जल रहा था. वह पीछे हटा.

"मैं कल आऊंगा. उससे कह देना."

"ओह. ऐसी-तैसी तुम्हारी. फिर नहीं आओगे तुम यह[illegible] रात के वक्त क्या कर रहे थे? फिर कभी मत आना इधर!" वह गुर्रायी, कुछ इस तरह से कि उसकी जबान की चौड़[illegible] साफ दिखाई देने लगी. खुले दरवाजे के समीप लंबी, ठं[illegible] बक्सेनुमा जगह पर एक हाथ दीवार पर, एक रैलिंग पर थ[illegible] हुए वह अपने दोनों पैरों को फैलाकर खड़ी थी. मकान [illegible] ही एक बक्से की तरह था, एक बेढब ऊंचा-नीचा डिब्[illegible] अपनी नुकीली फीकी रोशनी बर्फीली हवा में चुभोता हुआ[illegible]

"यदि आप मिसेज ग्रीन ही हैं तो मैं आपको यह चे[illegible] दे देता हूं." उसने अपना इरादा बदलते हुए कहा.

"तो यहीं दे दो, यहीं." उसने चेक ले लिया. ग्रेब से [illegible] लेकर अपने बायें हाथ से रसीद को दीवार पर टिकाया अ[illegible] साइन करने लगी. ग्रेब ने इधर-उधर झांका, जैसे कि क[illegible] उसके पागलपन को देख रहा हो और उसे लगा जैसे पड़[illegible] में मोटर पार्ट के कबाड़ के बीच टायरों के पहाड़ के शिख[illegible] पर कोई खड़ा है.

'पर आप ही मिसेज ग्रीन हैं न?' वह उससे पूछने [illegible] सोच रहा था. किंतु यदि उसने गलती कर दी है, यदि [illegible] झांसे में आ गया है तो काम सही करने में अब बहुत देर [illegible] चुकी है. वह चेक लेकर सीढ़ियां चढ़ रही थी. बहरहा[illegible] उसे इसकी चिंता नहीं थी. वह मिसेज ग्रीन न भी हो पर उ[illegible] यकीन था मि. ग्रीन ऊपर ही हैं. मि. ग्रीन उसे इस क्षण न मि[illegible] हो और वह औरत चाहे कोई हो पर वह मि. ग्रीन की प्रतिनिधि थी. 'अच्छा, तो हरामजादे,' उसने स्वयं से कहा, 'तू समझता है तूने उसे खोज लिया? तो क्या? च[illegible] तूने उसे खोज लिया--तो इससे क्या? महत्वपूर्ण तो [illegible] है कि एक वास्तविक मि. ग्रीन है जिसके पास पहुंचने से उन्हों[illegible] तुझे रोक दिया क्योंकि तू बागी आकृतियों के गुप्तचर [illegible] रूप में उससे मिलने आ रहा था!' धीरे-धीरे उसके चे[illegible] पर से आत्मग्लानि मिटने लगी, यद्यपि उसकी भभक उस[illegible] मुख पर अभी थी. फिर भी, उसमें एक उल्लास का भ[illegible] जन्मा. 'आखिर', उसने कहा, 'मैंने उसे ढूंढ़ ही लिया.'

● अनुवाद : इंदुप्रकाश कानून[illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

गलियां :
जहां इतिहास कैद है !

स्ती हजरत निजामुद्दीन औलिया:
जुल्म का कब चराग जलाता है ▫ बाला दुबे

पोलहवीं शताब्दी की कमसिन दिल्ली-महरौली से फिरोजशाह ोटला तक. जगह-जगह ऊबड़-खाबड़ कत्ते उसकी धरती पर फैले हुए, हीं-कहीं पनपते हुए बेरौनक गांव ौर फिर पुराना किला, जिस पर मायूं और शेरशाह सूरी दोनों ही ने पने-अपने झंडे गाड़े थे. और आज सी किले में ठहरा हुआ था बाईस ाल का अकबर. नसीरुद्दीन का बेटा लालुद्दीन. वह उम्र के खतरनाक ौर से गुजर रहा था. गधा-पच्चीसी ी उम्र और फिर मुट्ठी में बंद ुकद्दर का मोती. उसका हरेक लफ्ज ानून था, हरेक स्वप्न यथार्थ था. ाल ही में मुगलिया हरम का जादू सके सिर बोलने लगा था और रम के प्रभाव में आकर ही अकबर ने पने निगाहबान बैरम खां को दूध ा निकाली हुई मक्खी जैसा बना दया था.

अकबर की जवानी का सूरज चढ़ हा था. अब वह खतरों से छेड़छाड़ ी करने लगा था. नरवर के जंगल में सने एक ऐसा तलवार का हाथ ारा था, जिससे शेरनी का सिर धड़ ा अलग हो गया था. उसके बाद ही कबर और भी खुल गया. फिर उसने पने दुश्मन हेमू के हाथी 'हवाई' र बैठे-बैठे एक और खतरनाक खेल ेला. वह 'हवाई' पर बैठे-बैठे हुए खार हाथी 'रनबाधा' की तरफ पका था. ऐसा लगा मानो दो हिलते- लते पहाड़ लड़ रहे हों. लड़ते-लड़ते जमुना में जा घुसे और नावों के ल को तोड़ते-डबोते हुए उस पार हुंच ही गये. और अकबर था जो 'हवाई' की पीठ पर जमा रहा और बाद में बौखलाए हुए 'हवाई' को काबू में करके भी दिखाया उसने अपनी डरी हुई रियाया को.

और तभी खतरों से दिल्लगी करने वाला अकबर एक और खतरे से खेल बैठा—जमीन पर चलते-फिरते चांद के टुकड़ों से. बाईस साल की उम्र का अकबर अपनी जवानी की बगावत को कुचल नहीं सका.

उस दिन न जाने कैसे शेख अब्दुल वसी की बीवी अकबर के सामने आ गयी और वह भी बेपर्दा. अकबर को लगा जैसे चांदनी से नहायी कोई संगमरमर की जिंदा 'मूरत' उसे छेड़ गयी हो. वैसे अकबर को सहसा अपने सामने देखकर सुगरा भी इतना हड़बड़ा गयी थी कि वहां अपना बुर्का गिराना भी भूल-सी गयी थी. और जब उसने 'झपाक' से बुर्का गिराया तो अकबर को ऐसा लगा जैसे दोपहर के सूरज पर यकायक काली रात की चादर डाल कर ढक दिया हो.

सुगरा को देखते ही अकबर की चाहत की लौ भड़क उठी और उसके इज्तराब को राहत देने आ पहुंची दिल्ली की मशहूर कुटनी यासमीन. यासमीन ने ही बाअदब होशियार होकर मदहोश अकबर को बतलाया था—'आलम पनाह, दूधिया जिस्मवाली सुगरा को उस मुए शेख अब्दुल वसी के गले लटका दिया है उसकी अंधी तकदीर ने.' और फिर अकबर ने तय कर ही डाला कि शेख अब्दुल वसी की बीवी को उसका बनना ही होगा. अकबर ने फिर अपने राजदानों से मशविरा लिया था. और उन्होंने अकबर को ऐसा सधा हुआ मंत्र बतलाया जिससे बगैर लाठी तोड़े सांप बखूबी मारा जा सके. 'जिल्ले सुबहानी, चंगेजी खियात के मुताबिक अगर बादशाह किसी की बीवी पर फरेफ्ता हो जाये तो उसके शौहर को उसे फौरन ही तलाक दे देना चाहिए, जिससे बादशाह के रूबरू कोई बंदिश नहीं रह सके.'

अकबर यह सुनकर खुश हुआ और उसने अपने इस मुशीर को गले से उतारकर बेशकीमत कंठा भी दे डाला. दूसरे दिन शेख अब्दुल वसी को दरबारे मुगलिया में तलब किया गया. शेख अब्दुल वसी कांपती टांगों से आया था दिल्ली के पुराने किले में. रास्ते भर वह अटकलें लगाता रहा कि कौन-सी भूल के लिए उसे लपेटा जा रहा है. और जब अकबर ने हंसने की कोशिश करते हुए शेख अब्दुल को अपना मंशा सुनाया तो उसके पांवों तले जमीन खिसक गयी. सुगरा का वह भी दीवाना था और वैसे किसी शौहर का अपनी बीवी पर दीवाना होना कोई जुल्म भी नहीं था. पर यह तो सरासर जुल्म कर रहा है उसका बादशाह. चंगेजी कानून की आड़ में किसी के कुनबे की इज्जत लूटी जा रही है सरे आम. शेख अब्दुल वसी की इतनी भी हिम्मत नहीं हुई कि वह कुछ ना-नुकर कर सके. फिर उसके साथ-साथ ही अकबर ने डोली भेजी थी और देखते-देखते ही अपनी रिआया के एक अदने से शेख की बीवी हिंदुस्तान के बादशाह जलालुद्दीन अकबर के हरम में आ दाखिल हुई.

कुटनी यासमीन को दो पर्सें भरकर मोती दिये थे अकबर ने. दौलत के लालच ने ही यासमीन को और भी खतरनाक बना डाला. उसने सोच समझकर ही कहा था 'आलम पनाह, शहर दिल्ली में न जाने कितने चांद दिन भर चिलमनें उठाकर झांकते रहते हैं. अगर आप हुक्म दें तो मैं दिल्ली

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और आगरे में अपने मुखबिर छोड़ दूं जो हुजूर के लिए चांद के टुकड़ों की जुस्तजू कर सकें.' खतरनाक, उम्र के मोड़ से गुजरता हुआ अकबर फौरन ही यासमीन के जाल में फंस गया और उसी दिन से यासमील ने अपने दलाल और हिजड़ों को दिल्ली में बिखरा दिया. जिस घर में पानीदार नगीना नजर आये फौरन खबर करो. नतीजा यह हुआ कि कई इज्जतदार घराने तो डूब मरने के लिए चुल्लू भर पानी की तलाश में तड़पा किये. अकबर के सिर पर भूत सवार हो गया था--छंटे हुए टुकड़ों का. पूरी दिल्ली में एक दबी हुई चिनगारी फैलती गयी. भला बताओ, बादशाह को तो रिआया का पिता माना गया है और यहां अपना ही बादशाह आबरूपसंद घरों में यह घिनौना शिकार खेलने लगा. दिल्ली के लोगों ने अपने-अपने परिवार को नजरबंद कर दिया. यहां तक कि पुरानी नौकरानियों, बांदियों तक पर जनानखाने में घुसने पर पाबंदी लगा दी गयी. कुछ रईसों ने अपनी बांदियों को भी नजरबंद कर डाला, जिससे कि वे घर की बहू-बेटियों की सुंदरता का बखान कहीं भी बाहर न कर सकें.

दिल्ली एक खामोश ज्वालामुखी जैसी बन गयी. सबके चेहरों पर तैश की लाली, पर 'जबर' से टकराने का हौसला भी नदारद. जहां देखो हिंदू क्या और मुसलमान क्या--सभी यही मन्नत मनाते कि उनकी इज्जत ढकी रहे और जल्दी ही कोई माई का लाल अकबर को मुंह की खिलाने को खड़ा हो जाये.

'दिल से जो बात निकलती है असर रखती है'--दिल्लीवालों का मंशा भी पूरा हो ही गया.

दिल्ली शहर का ही एक बांका जवान था—फौलाद. वैसे फौलाद था भी फौलाद ही. सांचे में ढली तांबे की 'मूरत' जैसा, ओठों पर मुस्कराहट की हल्की-सी लकीर और आंखों में इरादों की परछाइयां.

जिस दिन फौलाद को पता लगा कि अकबर अगले जुमा के दिन हजरत निजामुद्दीन औलिया के मजार पर सिर झुकाने जा रहा है उसी दिन फौलाद ने अपना तीर-कमान संभाला था—12 जनवरी, सन् 1564 को. हजरत निजामुद्दीन के मजार के आसपास कुछ झोंपड़े खड़े हो गये थे और एक छोटी-सी बस्ती वहां आबाद हो गयी. बस्ती के दाएं-बाएं दूर-दूर तक सन्नाटा था और भरी दोपहरी में भी अकेला आदमी आने से पहले दो बार सोचता था. पर बादशाह की सवारी एक खासा जुलूस था. और जब अकबर मन्नत मांगकर वापस लौट रहा था तब किसी पेड़ पर चढ़कर फौलाद ने अपना तीर छोड़ा था--आहिस्ता से. वह यह नहीं चाहता था कि अकबर को मार दिया जाये, पर यह जरूर चाहता था कि अकबर दिल्लीवालों की इस अदना-सी खामोश बगावत से आगाह हो जाये.

फौलाद का तीर अकबर के शरीर में घुसा तो था, पर बहुत ही हल्का सा घाव बनाते हुए. अकबर और उसका जुलूस सकते में आ गया. फौरन ही फौलाद को पकड़ लिया गया और अकबर के सामने पेश किया गया. अकबर के दरबारियों ने मशविरा दिया कि फौलाद को फिलहाल जिंदा ही रखा जाये और यह तहकीकात की जाये कि आखिर उसे भड़काया किसने है, पर तभी फौलाद ने मुस्कराकर अकबर को इशारा भी फेंक दिया, 'यासमीन की बदबू से दिल्लीवाले वाकिफ हो गये हैं, आलम पनाह.'

यह सुनते ही अकबर सकपका गया. कहीं यह बेवकूफ सबके सामने यासमीन के कारनामों का बखान न कर डाले. तब अकबर ने फौरन सजाये मौत का हुक्म सुनाया था फौलाद के लिए. पर फौलाद हंसता रहा, खुश होता रहा. और उसी वक्त सिपाहियों ने फौलाद के टुकड़े-टुकड़े कर डाले.

दिल्ली की बहू-बेटियों का हिमायती फौलाद मर कर भी कई साल तक जिंदा रहा. दिल्ली के रईसों ने मातम मनाया अपने शहीद फौलाद का—

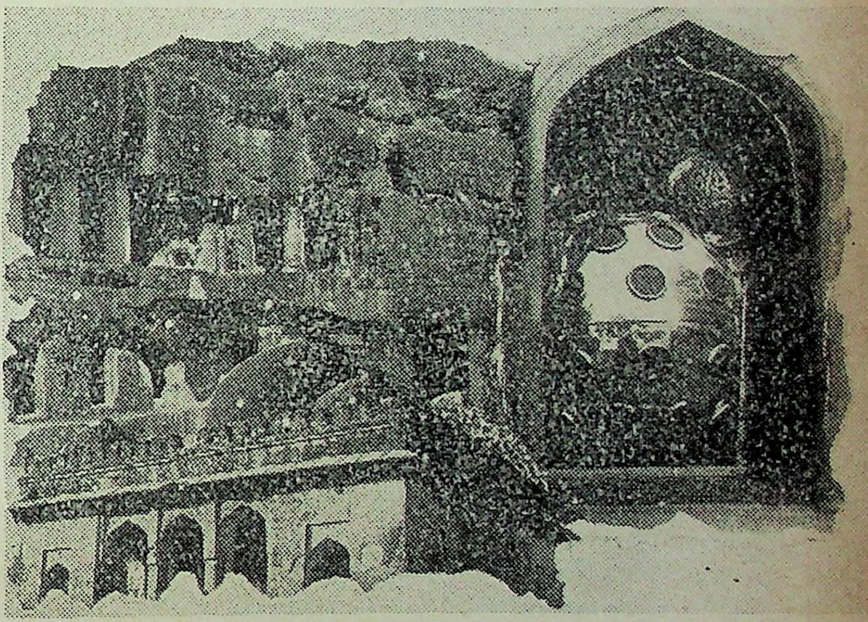

उसके खानदान के लिए वसीके बांधे. और उसी दिन से अकबर ने भी इश्क के इस खतरनाक खेल से तौबा कर ली. वह समझ गया कि रिआया से छेड़-छाड़ अच्छी नहीं है. आग से खेलना एक खतरनाक खेल है, जिससे हाथ ही क्या, समूचा मुगलिया तख्त भी जल सकता है. और अकबर ने अपने हाथों जलाये उस जुल्म के चिराग को खुद ही झपककर बुझा दिया, अपने ही दामन से. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुर्दाखोर

▫ विजयकिशोर मानव

"रोटी तो पेट के लिए चाहिए ही और उसके लिए कमाना मजबूरी है. कुछ भी करो कंचन, पर इस 'रूटीन' के साथ-साथ कुछ कमाई करो, पैसा जीने की सबसे बड़ी जरूरत है." और उसने जब से रवि के इस सुझाव पर सोचना शुरू किया है, उसे खुद पर काफी भरोसा होने लगा है.

कंचन सुबह आंखें मलता उठा तो धूप छज्जे पर आ गयी थी. ठीक से मुंह धोये बगैर ही वह, कैमरा कंधे पर टांगता, तीर की तरह बाहर निकल गया. घाट पर जल्दी पहुंचने की फिक्र से अधिक उसे किसी के जग जाने का डर था. कहीं मामा जग गये तो पूरा दिन ही गया काम से. उनकी सुबह की कांय-कांय पूरे दिन के लिए उसका मूड आफ करके रख देगी.

चार बजे तक घाट पर कुल तीन लाशें आयी और तस्वीर सिर्फ उनमें से एक ने कराई, यहां के सबसे पुराने फोटोग्राफर वर्मा से. उसका कोई दूर का रिश्तेदार था. जाहिर है 'सालिड क्लाइंट' था उसका. कंचन तथा दूसरे फोटोग्राफर मन मसोस कर रह गये थे, जब उसने मुर्दनी में आये एक अधेड़ व्यक्ति से घरेलू अंदाज में पूछा था, "क्या ...चाचा नहीं रहे...च्च...च्च...च्च."

अचानक उसके जेहन में रमा चाचा, फरहत, जमना बाबू और सेठ रोशन लाल जैसे अपने परिचितों के चेहरे उभरे. और वह शाम तक सोचता रहा कि इनमें से कोई भी टपक सकता है. और आज के धंधे की बोहनी करा सकता है. रमा चाचा छः महीने से चारपाई पकड़े हैं और हफ्ते भर में कई बार जमीन पर लिटाये जा चुके हैं. फरहत को एक्सीडेंट के बाद तीन दिन से होश ही नहीं आया है. जमना बाबू दिल के दौरे के बाद से इंटेंसिव केयर यूनिट में ही हैं. सामने के मकान में सुरेश के बाबा अब खांसते हुए दुहरे होते हैं तो सांस वापस आने की कोई गारंटी नहीं रहती. और सेठ रोशन लाल को तो डॉक्टर रेडियम लगाते वक्त ही कह चुके हैं, "जब तक चल रहे हैं, चल रहे हैं." उसके चेहरे पर संतोष के साथ मुस्कान की सिलवटें पड़ीं और इन सब की स्थिति के बारे में सोचते हुए उसे विश्वास हो गया कि आज इनमें से जरूर एक-दो आयेंगे.

लेकिन जब शाम पांच बजे तक इनमें से किसी की भी बारात (शव यात्रा) नहीं आयी तो उसे खीझ होने लगी. वह बुदबदाया,'सुसरे जरूरत पर नहीं मरेंगे. आज नहीं तो कल मरेंगे ही, पर किसी की परेशानी के वक्त....' उसे खीझ तो अक्सर कामचलाऊ धंधा हो जाने पर भी होती है, पर मामा का आतंक और अपनी बेचारगी, उसके पांवों को सुबह ही घाट पर ला खड़ा करती है. धंधा न होने पर उसे उम्मीद बंधती है कि एक न एक दिन जरूर मामा उसे घाट आने से मना कर देंगे और तब वह मनचाही फोटोग्राफी कर पायेगा—स्टूडियो में और आउटडोर. वह घर लौटते हुए यही सोचता रहा.

वह टीनशेड के नीचे बैठा, दूर पक्के फर्श पर जलती चारों चिताएं बारी-बारी से देख रहा था. दो ऊंचे प्लेटफार्म पर और दो नीचे खुले आसमान तले थीं. बरसात की हल्की फुहार लाल हो गयी चिताओं की आग पर, कोई असर नहीं कर पा रही थी. धुआं ऊपर छा कर रह गया था. अंगारों के बीच से लाश का एकाध हिस्सा झांकता तो लगता अभी देर है, पर घाट का डोम जीवा अनवरत बांस चलाकर उसे जल्दी फुंकने की कोशिश में था जैसे आग की लाश को खाक करने की गति से असंतुष्ट हो. बगल में बैठे दो मोटे कुत्तों में भी शायद जीवा की ही चाहत है. जीवा को राख में सोने के टुकड़े की अपेक्षा है तो कुत्तों को पानी में फेंकी गई राख में से जलने से बचे मांस का टुकड़ा ले उड़ने की.

चंद दिनों में ही कंचन घाट की ऐसी जाने कितनी गतिविधियों का जानकार और अभ्यस्त हो गया है. डोम और कुत्तों का मकसद उसे पता है. यहां लकड़ी के टाल वालों का अपना अलग अंदाज है. पांच मन से जल सकने वाले मुर्दे के लिए सात मन जरूरी बताकर गांठनुमा लक्कड़, किसी को भी मनमाने दामों पर भेड़ने में इनका जोड़ नहीं. कोई रोज तो मुर्दा फूंकता नहीं कि उसे लकड़ी की सही आवश्यकता मालूम हो और मोलभाव की यहां गुंजाइश है नहीं. पीढ़ी-दर-पीढ़ी मुर्दा पुजाने वाले पंडों को दाहसंस्कार से क्या, तेज आवाज में, भोंडे ढंग से कोई भी श्लोक पढ़कर दक्षिणा भर वसूलनी होती है. टेंट गर्म होते ही गधे के सिर से सींग की तरह गायब होना घाट के हर धंधे का तरीका है. मुर्दे का परिवार बिना लिखा-पढ़ी का ढेर सारा कर्ज अदा करने को मजबूर सचमुच गमी मनाकर यहां से वापस जाता है.

वह खुद भी तो इसी जमात का हिस्सा है. यह सोचकर वह अक्सर ग्लानि से भर उठता है. हर मुर्दे से नहीं पर कुछ से जिसके संबंधी, मरने वाले से जुड़ाव कुछ अधिक ही महसूस करते हैं, उसका यही रिश्ता होता है. वरना मौत के बाद फोटो खिंचाने का क्या तुक है. वैसे यहां औरों के मुकाबले सबसे अधिक कम्पटीशन फोटोग्राफी के ही धंधे में है. बीस बरस की उम्र और फिर कंचन अभी बिल्कुल नया है जबकि बाकी के सभी यहीं सफेद हुए हैं. ये सब स्थितियां उसे एकदम बौना बना देती हैं. बस मामा के बताये टैक्ट ही उसे यहां टिकाये हैं.

इधर बरसात पूरे जोर पर है. चार दिन से पानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अचानक उसके जेहन में रमा चाचा, फरहत, जमना बाबू और सेठ रोशन लाल जैसे अपने परिचितों के चेहरे उभरे और वह शाम तक सोचता रहा कि इनमें से किसी न किसी को आज ही जरूर मरना चाहिए ताकि उसकी बोहनी हो सके. . . . कैसे होते हैं वे हालात् जो किसी की तमाम सद्भावनाओं को सुलाकर उसे अपने ही लोगों की मृत्यु की कामना करने पर विवश कर देते हैं. . . . ?

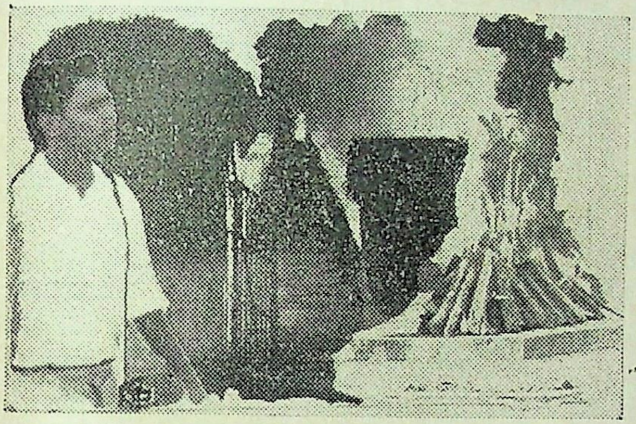

थमा ही नहीं है. रूहें खूब टपक रहीं हैं. घाट पर धंधा करने वाली पूरी जमात अपने-अपने खुदाओं का शुक्र अदा करती अत्यंत खुश है, हर बरसात की तरह. सीजन गर्म है, एक के बाद एक, 'बारातों' का तांता लगा रहता है. कंचन देखा करता है; बारातों के साथ ही खूब ऐश हो रहा है. बोतल और अद्धे खाली होते हैं, पिक्चरबाजी और तफरीह के साथ काम चला करता है. एक पिक्चर देखता है तो दूसरा उसके मर्दे निबटाता है. फिर दूसरा जाता है. एक-दूसरे के बीच जैसे अलिखित समझौता है. मौत का कोई वक्त तो होता नहीं है, पता नहीं किस नदी के किनाने का कौन-सा दरख्त कब भरभरा पड़े. आत्मा कब चू पड़े. उसके लिए कौन धंधा कर देगा, किसी से समझौता भी नहीं है. फिर वह कहीं जाये और मामा आकर 'इंस्पेक्शन' करें तब तो उसकी खैर नहीं. इसी से वह पूरी देर घाट पर खुद भी मुर्दे की ही तरह स्थापित रहता है. पिटाई, ताने, खाना न मिलना और बोरी-बिस्तर बंधवाकर घर भेजे जाने का डर उसे तत्पर रहने पर मजबूर किए रहता है वरना. . . यह सब करने की तो उसकी उमर ही है. यह सोचता वह अक्सर उदास हो जाता है. उसे लगता है लाश में कुछ तो होता ही है, उसमें कुछ भी नहीं है जिसे जलाना शेष हो. जिंदा होने के सबूत के नाम पर नब्ज चलती है, सांस चलती है बस.

अब की बरसात जैसा 'सीजन' वर्षों बाद आता है. वहां के लोग बताते हैं—शहर में महामारी या बलवे के दिनों में ही इस रफ्तार से 'बारातें' आती हैं, वह भी दो-चार दिन! बाकी साल भर तो दो चार हर रोज का औसत रहता है. धंधा करने वाले चील-कौवों जैसे हैं; बोटी-बोटी का ही हिसाब पड़ता है. इसीलिए 'काम्पिटीशन' है और सीजन के पहले जरूरी तैयारियां करके हर कोई बाधाओं से निबटने की भूमिका बना लेता है. उसने खुद भी तो मामा के कहे पर कई रीलें रख ली थीं, यह सोच कर कि रीलों की किल्लत तब कहीं और न बढ़ जाय.

'राम नाम सत्य है. . .' की आवाज पर उसने पलट-कर देखा, दूर से ही लगा ठीक लोग है, फोटो होनी चाहिए. आवाज और साफ सुनाई पड़ने लगी तो कैमरा ठीक करता कंचन, उधर को बढ़ गया. आज यह अठारहवीं 'बारात' थी. चार तो कंगले ही निकल गये थे. बाकी में दो उसके हिस्से आयी थीं. उसने तीस-तीस 'स्नैप' लिये थे जबकि बात बीस की हुई थी. मामा का बताया गुर था कि 'औकात देखकर पार्टी के मना करने तक स्नैप्स लेते रहो और उसे बताओ कि साहब यादें ही बचतीं हैं बाकी सब तो चला जाता है. लोगों की भावुकता कैश करो मास्टर. यही तो धंधा है.' मामा की बताई ऐसी ही और बातें हैं जिनमें हमदर्दी के कुछ वाक्य रटना और 'राम नाम सत्य है' की आवाज सबसे पहले सुनना प्रमुख हैं. अभी आयी बारात पर इनमें से कई गुर उसने लगाये. आखिर एक परिचित चेहरे ने काम 'फिट' करा दिया. उसका यहां धंधा करते-करते विश्वास जम गया था कि बारात उसके हिस्से आये उसके लिए सबसे कारगर बात है—किसी जान-पहचान वाले की गमी. उसकी उंगलियां कैमरे के बटन पर और आंख लेंस के सामने थीं, वह फोटो खींचे जा रहा था.

कंचन शाम पूरी तरह घिरने से पहले ही खुशी से घर की ओर चल दिया. पूरी दहाई 'बारातों' के स्नैप्स उसके पास थे. वह सोच रहा था आज जाकर मामा से कहेगा, 'मैं हरामखोर नहीं हूं. देखिए ये रीलें, मैं पूरे दिन मेहनत करता हूं.' उसे अब भी ठीक-ठीक याद है कि एक दिन घाट से बैरंग वापस आने पर मामा ने कितनी गालियां बकी थीं, क्या-क्या कहा था. "ऐसे तो नहीं चलेगा, मैं दिन भर गधों की तरह मेहनत करने तुम्हें खिलाऊं और तुम हरामखोरी करो." भुनभुनाते हुए मामा चीखे थे, "भाग जा वहीं अपने बाप के पास, हराम खोर कहीं का." वह चुपचाप कोने में खड़ा रहा था. शब्द गले में ही घुट गये वरना उसने कहना चाहा था, 'दिन भर लाशें देखते और कुत्तों की तरह उनके पीछे भागते पूरी की पूरी टांगें फोड़े जैसी दुखने लगी हैं. अब धंधा न हो तो क्या फोटो खींचने के लिए कोई मुर्दे बनाए.' इतनी डांट सुनने के बाद उसे डर था कि मामा उससे रील न मांग लें

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्योंकि उसने उसमें चोरी से दो-तीन स्नैप्स अपने मन के ले लिये थे.

लेकिन वह स्टूडियो पहुंचा, तो रास्ते में सोचा कुछ भी बोल नहीं सका. गया और सारी रीलें मामा को देकर चुपचाप खड़ा रहा, प्रतिक्रिया जानने के लिए. मामा ने सिर उठाकर उस पर एक गहरी नजर डाली और सिर्फ इतना ही कहा, "भगवान सब की सुनता है. लगता है यह साल घाट के लोगों के लिए अच्छा है." मामा की यह टिप्पणी उसे खुश करने की जगह छील गयी. कभी कोई क्रेडिट न देने की जैसे कसम खाये हों. उससे और खड़ा नहीं रहा गया. वह रवि के घर की ओर चल पड़ा.

इधर जब कभी थोड़ा-सा भी मौका मिलता है, वह रवि के यहां जाने के अलावा लोगों से मिलने-जुलने की ही कोशिश में रहता है. राजनीति, धर्म, सेक्स वगैरह विषयों पर हो रही चर्चा में, वह अपने अल्प ज्ञान के बावजूद 'पिल' पड़ता है. कुछ जोड़ने की इस कोशिश से वह मुहल्ले के अनेक लोगों और उनके इष्ट-मित्रों के काफी करीब आ गया है. इसका कारण शायद यह है कि रवि घाट के धंधे में सफलता के लिए तो परिचय को अनिवार्य मानता ही है, अपने अलग से कमाई करने के विचार के लिए भी, उसे यह जरूरी लगता है.

रवि से उसने सब कुछ बता रखा है. उसी ने कंचन को सुझाया था कि वह कभी-कभी एक-आध पार्टी या शादी-व्याह में मौका लगाकर फोटो वगैरह खींच लिया करे, अपने ऊपर के खर्च के लिए. उसने शुरू में रील वगैरह के पैसे देने और मदद करने को भी कहा था. दो-तीन पार्टियां भी उसके पास भेज चुका है. लेकिन, कंचन बेचारे की हालत यह होती है कि डर से उसको हकलाहट होने लगती है. बार-बार सोचकर भी वह पार्टी से 'हां' एक बार भी नहीं कह सका. फोटो खींचना, डेवलपिंग, प्रिंट्स बनाना, छिपा कर पैसे रखना और खर्च करना. उस पर किसी भी दिन कोई आरोप लग सकता है. पिछली कई रातों की तरह रवि के प्रस्ताव और अपनी स्थिति पर सोचते, बिना किसी निर्णय पर पहुंचे कंचन फिर सो गया.

मां के कहने पर कंचन कुछ बनने के सपने लेकर मामा के पास आ गया था. फोटोग्राफी उसे नासमझ होने की उम्र से ही बहुत अच्छी लगती है, पर अब धंधे में आने के थोड़े ही दिनों बाद, उसे फुटपाथ पर स्टैंड से बंधा कैमरा रखे बैठे, घंटे भर में फोटो देने वाले फोटोग्राफर तक अपने से बहुत अच्छे लगने लगे हैं. जिन्हें वह हमेशा दयाभाव से देखता रहा है, वे उससे लाख दर्जे स्वतंत्र और सुखी हैं. उसकी स्थितियां हमेशा से इससे ज्यादा ही खराब रही हैं, पर मानसिक यातना इन दिनों सबसे अधिक है. उसे अपने पिता, सीधे होने की जगह अपराधी लगने लगे हैं. सीधा होना किस काम का, जब कोई अपने बच्चों को यतीमों की तरह पालने पर मजबूर हो जाये. बड़ा भाई घाटा दिखाकर सब कुछ हजम कर ले और फिर तुरंत बाद से धंधा चमक जाये. बेटे को पालतू पिल्ले की तरह मामा जैसे किसी व्यक्ति के पल्ले बांध दे, कम उम्र में जवान हो गयी बेटी चीथड़ों में अपना शरीर छिपाने की नाकाम कोशिश करते-करते समझदार हो जाये और पत्नी आधी उम्र में ही टी.बी. की मरीज होकर जीवन का ईंधन बनकर सुलगती रहे. ऐसा व्यक्ति भलामानुस या महापुरुष तो हो सकता है, पर पिता या पति कभी नहीं हो पाता. उसे भी

व्यंग्य

भगवान और विज्ञापन

▣ शंकर पुणतांबेकर

दो पैरों पर खड़ा वह ऊंचा और भव्य विज्ञापन भगवान के मंदिर के ठीक सामने सड़क के दूसरे किनारे लोगों का ध्यान बरबस आकृष्ट करता था.

एक दिन एकांत का मौका पाकर विज्ञापन ने मंदिर में स्थित भगवान से कहा, "कहो, मिजाज कैसे हैं!"

"मेरे मिजाज पूछते हो, तुम्हें शर्म नहीं आती!" भगवान ने चिढ़कर कहा.

"क्यों, शर्म क्यों आये! अपने ही लोगों से बात करना क्या शर्म की बात है?"

"अपने ही लोग. . . मतलब?"

"क्या तुम मेरे भाई नहीं हो?" विज्ञापन ने सवाल किया.

"भाई. . . कैसी बेहूदा बात करते हो!"

विज्ञापन ने कहा, "क्या हम तुम एक ही पिता की संतान नहीं हैं!"

"तुम्हारा पिता कौन है?"

"पूछो कि हमारा पिता कौन है. जानते नहीं, हमारा पिता आदमी है!"

"मूर्खों जैसी बात न करो. आदमी तुम्हारा पिता हो सकता है, मेरा नहीं. आदमी तो मेरी संतान है."

भगवान की यह बात सुनकर विज्ञापन हंसा, पूछा, "यह मंदिर किसने बनवाया है!"

"मंदिर बनाने से हो आदमी मेरा पिता नहीं हो जाता है."

"तुम तो वास्तव में पत्थर हो," विज्ञापन ने कहा, "तुम पर वह सिंदूर न चढ़ता तो क्या तुम भगवान बन जाते?"

"तो क्या तुम समझते हो, पत्थर पर सिंदूर चढ़ जाने से वह भगवान बन जाता है?" भगवान ने कहा.

"नहीं," विज्ञापन ने कहा, "पर इससे जो भाव बनता है उससे पत्थर भगवान बन जाता है. और भाव का यह उत्स तो आदमी में ही उपजा है. और इस नाते तुम आदमी की संतान हुए."

"वह उत्स उसमें किसने पदा किया?" भगवान ने पूछा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तुम्हें तोड़ने का भाव भी आदमी में उपजता है, तो क्या इसके पैदा करनेवाले तुम हो!"

भगवान कुछ रुष्ट हो गया. बोला, "तुम मुझे तर्क से जीतना चाहते हो."

विज्ञापन भगवान की इस बात को सुनकर हंसा. बोला, "तुम जैसे तर्क से काम ही नहीं लेते. क्या यह तुम्हारा तर्क ही नहीं कि मैं तर्क से परे हूं."

"तुम मुझसे भाई का नाता जरूर जोड़ो, पर तुम्हारी और मेरी कोई बराबरी नहीं."

"मैं भी मानता हूं. तुम क्या बराबरी कर सकोगे?" विज्ञापन ने कहा.

"उल्टा मत बोलो," भगवान ने कहा, "तुम मेरी बराबरी क्या कर सकोगे! दो टांगों पर खड़ी एक चद्दर से ज्यादा तुम्हारी औकात ही क्या?"

"मेरी औकात की बात करते हो!" विज्ञापन ने चिढ़कर कहा, "मेरी औकात की तुम क्या जानो. मेरे सृष्टा से पूछो, उसे मैं क्या कुछ नहीं देता हूं. तुम अपने को इतना औकात वाला मानते हो, तुमसे उसे क्या मिला है?"

"क्यों उसे मुझसे सचाई, नेकी, विनय. . . "

"युगों से तुम यही बातें करते आये हो. खैर, मानता हूं कि आदमी को तुमने यह सब दिया. और इस सबसे ऊबकर ही शायद, तुमसे भी बढ़कर और दूसरे भगवान को उसने पैदा किया." विज्ञापन ने कहा.

"मुझसे बढ़कर भगवान! कैसी बात करते हो!" भगवान ने कहा, "एक तो मुझे यह बात ही स्वीकार नहीं कि आदमी ने भगवान को गढ़ा है. और यदि मान भी लूं तो वह मुझसे ऊंचे भगवान को नहीं गढ़ सकता."

"कैसे नहीं गढ़ सकता. उसने मुझे नहीं गढ़ा है?" विज्ञापन बोला.

"क्या तुम भगवान हो! मुझसे बढ़कर भगवान!"

"हां! अब देखो न!" विज्ञापन ने कहा, "आदमी कितना ही खरा हो, वह मेरे. . . विज्ञापन के बिना आगे बढ़ नहीं सकता. और वही आदमी कितना ही खोटा हो, वह तुम्हारे. . . भगवान के बिना बराबर आगे बढ़ता जाता है."

इस तथ्य को भगवान झुठला नहीं सकता था. जहर के घूंट की भांति विज्ञापन के ये शब्द पी गया और हमेशा की भांति पत्थर बना हुआ वह अपने स्थान पर चुपचाप खड़ा हो गया. □

● 163 जिल्हा पेठ, जलगांव (महाराष्ट्र)

अक्सर उसके अपने पिता ही पिता नहीं लगते.

उसे आये छः माह हो गये हैं. अब कभी-कभार मामा सामने की दूकान से एक चाय मंगवा देते हैं. इसी से उसे लगता है जैसे उसकी इज्जत इस घर में कुछ बढ़ गयी है. बाकी तो अब भी सुबह उसके उठने तक मामा-मामी सोते रहते हैं. और, वह खुद चाय बनाकर, अपने लिए रखी,

रात की बनी रोटियां पेट में डालकर, कैमरा लटकाए, स
घाट को भागता है. पर पूरे दिन खाली पेट नहीं
पाता. यहां मां भी तो नहीं हैं जो छः बार पूछें और न हो
घाट पर ही खाना भेज दें.

कंचन की तंद्रा तब भंग हुई जब उसे सिर्फ कुछ कदम
से 'राम-नाम सत्य है'. . . की आवाज सुनाई पड़ी. वह पलट
ठीक से बारात का जायजा लेता तब तक मुर्दा आगे नि
गया था. वह बिजली की तेजी से भीड़ की तरफ बढ़ा. क्र
उसका विश्वास जमता जा रहा था कि मुर्दा किसी परि
परिवार का है. हरि, बांके, राजेश और मनोज—एक
इतने परिचितों को देखकर वह भीतर से चहक उठा.
इसकी फोटो तो वही करेगा, दूसरा कोई पर भी नहीं
सकता. वह आदतन आगे बढ़ा और एक बुजुर्ग के का
फुसफुसाया, "मामा-जी, कौन नहीं रहा?" उसके होंठ
पर आवाज बाहर नहीं निकली. होठों की शक्ल कुछ वै
हो गयी जैसी किसी की भी रोते समय ही होती है.

मुर्दा रख दिया गया. वही बुजुर्ग आंखें पोंछते, उसे
जगह रखवाने आदि की व्यवस्था कर रहे थे. कंचन का
पर झूलता कैमरा हमेशा की तरह 'रेडी' होने की पोजीश
आने के लिए केस से बाहर झांकने लगा था. चिता के
लकड़ी लायी जा रही थीं. लोग अलग-अलग झुंडों में वही
कर रहे थे जो साथ के लोग हर बारात में मुर्दे के संबं
करते हैं. 'बड़ा अच्छा लड़का था. . . बाइस साल भी कोई उ
होती है. . .आजकल जिंदगी का कोई भरोसा नहीं. . .
जी पर तो पहाड़ टूट पड़ा. . .' वगैरह. . . वगैरह. कंच
यह सब सुना तो लेकिन वह यह सब सुनने का इतना अ
हो चुका है कि किसी के मरने, रोने और चीखने-चिल
का उस पर कोई असर नहीं पड़ता. वह कैमरा बिल्कुल तै
किए, शव खोले जाने की प्रतीक्षा कर रहा था.

शव का कफन उतर रहा था. चेहरे के बाद कंचन
नहीं देख सका. वह एकाएक जैसे जड़ हो गया, बिल
पत्थर. एक क्षण को तो उसे लगा कि झोले में पड़ी तीनों
किसी आटोमैटिक कैमरे में लगाकर खटाखट सारी तस
उतार ले. कैद कर ले सब कुछ. और दूसरे ही क्षण चित
कैमरा झोंकने का जुनून उठा. लेकिन तभी उसका ध
अपनी स्थिति पर गया और उसकी भावुकता का पारा
उतर गया जैसे भट्ठी में रखा थर्मामीटर बर्फ में गाड़
गया हो. मुर्दे का चेहरा और कनपटी जैसे किसी तेज पं
खरोंच लिये गए हों. उसने एक झटके से कैमरा हाथो
पकड़कर आंखों के सामने किया और फोकस ठीक क
लगातार खट. . . खट. . . खट तस्वीरें लेता रहा. किसी
और बारात के फोटो खींचने जितने ही सामान्य कंचन
आंखें, अपने अजीज रवि की लाश के फोटो खींचने के बाद
कतई गीली नहीं थीं. बस फ्लैश चमकने के साथ, हर
एक बात उसके जेहन में कौंध रही थी—वह मुर्दाखोर ज
का एक हिस्सा है. दूर से ग्लैमरस पर अंदर से पूरी
सड़ा बदबूदार, दोस्त की लाश से पेट भरनेवाला मुर्दाखोर.

● 117/331 'एन' साकेतपुरी, कानपुर-25

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथा-सूत्र

मौत की यातना का अंदाजा आखिर क्यों इतना खौफ भर जाता है इंसान में कि वह अपनी हिम्मत ही हार बैठता है . . . !

मौत का डर कोई डर नहीं है

▣ राकेश वत्स

नहीं नहीं मुझे मत
मारो! मैं मरना नहीं
हता. . . मैं सच कहता हूं
मैंने कोई खून नहीं
या है. . . मैं भगवान की
र अपने बीवी-बच्चों की
म खाकर कहता हूं कि
बेकसूर हूं! मुझे झूठा
ाया गया है!"

इन शब्दों में घिघियाता
ा एक पतला-पतंग
ड़यल आदमी खून करने
जुर्म में फांसी पर लटकाए
ने से पहले ही जेलर के
ं पर गिरकर बेहोश
गया और जब तक उसे
ा नहीं आ गया तब तक
लिये फांसी रोक
ी पड़ी.

सवाल उठता है कि
न में आखिर ऐसा क्या
जिस के प्रभाव में आदमी
हद तक पस्त, कायर
र अदना हो जाता है
अंततः वैचारिक
प्रता का शिकार होकर
मियाने लगता है?

जवाब को स्थूल बनाकर
ा जा सकता है कि मूल
से इस में दो चीजें
न करती हैं : पहली
ार के प्रति आकर्षण
र मोह का भाव और
री दम टूटने की यातना
भय. अगर इन दोनों
आदमी के मन-मस्तिष्क
खारिज कर दिया जाए
मौत आदमी को सचमुच
पुराने कपड़े उतारकर
धारण करने की तरह
़े-बहुत उल्लास से
र भर सकती है.

ऊपर वाली फांसी के
ही दो फांसियां और भी
जानी थीं. वे दोनों पहली
ी से बिल्कुल भिन्न
ल्लीं. एक आदमी ने
ने हाथों से शरीर मल-
मलकर स्नान किया, पूजा-पाठ से निबट कर अपने इष्ट का नाम जपता हुआ बड़े शांत भाव से फांसी के तख्ते पर जा चढ़ा. और दूसरा हाथ उठा-उठाकर नारे लगाता हुआ, खुद अपने हाथों में फंदे को गले में डालकर, बिना टोप चढ़ाए ही रस्से पर झूल गया.

क्या इन दोनों मिसालों में संसार का मोह और यातना का भय खत्म हो गया था? जरूर, इन दोनों ने अपने-अपने मिशन के बड़प्पन के सामने मोह और भय को इस हद तक छोटा बना लिया था कि उन की मानसिकता के लिये इन का कोई महत्व ही नहीं रह गया था. आध्यात्मिक और राजनैतिक प्रतिबद्धताएं आदमी को अपने-अपने ढंग से मौत के भय से मुक्त करके किसी अलग ढंग के आनंद में सराबोर करती हैं. प्रतिबद्धता जिंदगी की सबसे बड़ी पूंजी है.

संघर्ष या जद्दोजहद करता हुआ आदमी भी मौत के आसपास मंडराने वाले मोह और भय से काफी मुक्त रहता है. जब हम अपने किसी दुश्मन से लड़ रहे होते हैं उस वक्त मार की पीड़ा हमें नहीं सताती. यहां तक कि घाव की पीड़ा भी हम बर्दाशत कर जाते हैं. लड़ने का जोश हमारे उत्तकों और कोशिकाओं को ही नहीं बल्कि मन को भी पीड़ा झेलने के काबिल रखता है. मार या घाव की पीड़ा हमें उस जोश के ज्वार के उतर जाने के बाद महसूस होती है. युद्धभूमि में शत्रु के साथ लड़ाई लड़ते हुए योद्धाओं को मौत का डर बहुत कम परेशान करता है. अपनों की रक्षा करने का उत्साह और राष्ट्र के प्रति लगाव की प्रगाढ़ता वहां रक्त में ज्वार पैदा करने के सबल साधन बनते हैं.

मुझे कई बार एक अजीब-सा एहसास होता है. सुनते चले जा रहे हैं कि मरने के बाद आत्मा किसी दूसरे लोक पहुंचती है. कई बार उस लोक को देखने और उस का सानिध्य पाने के लिए मन उतावला हो उठता है. बिलकुल वैसे ही जैसे नये नगरों, पहाड़ों, जंगलों और ऐतिहासिक स्थानों को देखने के लिये आदमी का मन लालायित रहता है. ब्रह्मांड के अनंत विस्तार में किसी दुनिया के होने की संभावना कोरी कल्पना नहीं हो सकती. उस विचित्र दुनिया को देखने और वहां के नये से नये अनुभव हासिल करने का लालच खूब ठाठें मारने लगता है.

नये को पाने के लिये पुराने से दूर होने का जोखिम तो उठाना ही पड़ता है. लेकिन मौत के बाद फिर उसी शक्ल में लौट आने की सहूलियत नहीं रहती, नहीं तो मौत से बढ़कर एडवेंचर कोई दूसरा नहीं है. बहुत से लोग आत्महत्या के रूप में मौत को गले लगाते हैं. इससे बढ़कर भद्दा साहस कोई दूसरा नहीं है. एक डरावनी स्थिति से भागकर दूसरी डरावनी स्थिति में प्रवेश करने के साहस को साहस नहीं बल्कि कायरता कहना ही यूं वाजिब होगा. प्राण पारस से भी कहीं ज्यादा कीमती चीज है. उसे यूं ही शून्य के अनंत समुद्र में फेंक देना कहां की अक्लमंदी है? प्राण दे देने की हिम्मत से तो सब कुछ पाया जा सकता है. उसका सही इस्तेमाल होना ही चाहिये.

मौत की यातना का डर आदमी को अपना बड़ा से बड़ा शोषण करवाने के लिये विवश करता है. अर्थ और धर्म के वैषम्य को बर्दाश्त करवाने वाली घिनौनी कमजोरी का कारण भी यही एक डर है.

आदमी को इस से मुक्त करना नितांत आवश्यक है. लेकिन दर्शन के सिवा दूसरे किसी विकास ने इस तरफ बहुत ध्यान नहीं दिया है. शायद इसलिये कि व्यवस्थाओं की शक्ति का शीशमहल इसी नींव पर टिका है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सौवीं रात

•आदवन सुंदरम्

शादी की सौवीं रात को पति-पत्नी का रिश्ता एक ऐसे मोड़ पर आ गया था जहां व्यवहार के सारे पैमाने बदल गये थे. प्रस्तुत है इस नाजुक रिश्ते को उकेरती तमिल कहानी

पद्मनाभन उर्फ पद्दू ने जब उपन्यास पढ़कर खत्म किया तो बारह से भी ज्यादा बज गये थे. उसकी पत्नी गहरी नींद में सो रही थी. किताब को एक तरफ रखकर उसने बत्ती बुझायी और अपनी आंखें बंद कर लीं. पर उसे लगा कि वह सो नहीं पायेगा. इसका कारण था उसकी पत्नी.

वह करवट से लेटी हुई थी और चेहरा उसकी तरफ था. उसका एक हाथ और टांग उसके ऊपर पड़े, उसे कसकर जकड़े हुए थे. उसे पेट के बल लेटकर, दोनों टांगें फैलाकर लेटना सुविधाजनक लगता था. पर इस समय तो वह सीधा लेटा हुआ था, पत्नी के हाथ-पांव के शिकंजे में जकड़ा हुआ. ठीक से लेटने के लिए जरूरी था कि पहले पत्नी को जगाये. पर बेचारी पत्नी, वह तो पूरे दिन काम में खटती रही होगी. उसकी नींद में खलल डालना ठीक नहीं होगा. इसलिए अपनी असुविधा को नजरअंदाज करता हुआ वह इसे एक सुखद आलिंगन की कैद मानने की कोशिश करने लगा.

पर कैद किसलिए. . .एक पुस्तक पढ़ने पर! यह जासूसी

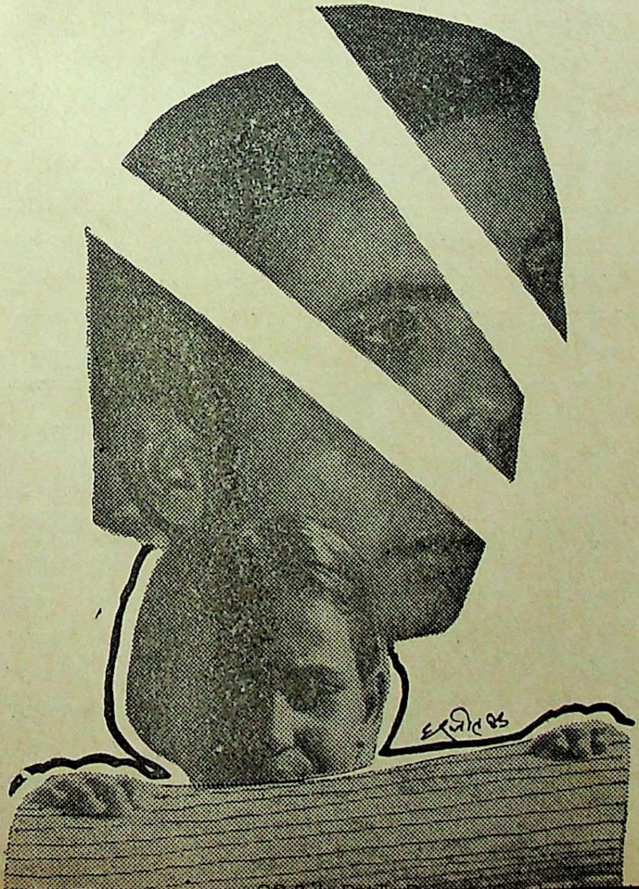

उपन्यास उसने कल सुबह पढ़ना शुरू किया था, बस की लाइ में खड़े-खड़े. शाम को घर लौटते हुए उपन्यास एक दिलच मोड़ पर आ गया था. उसने सोचा था कि घर पहुंचने आराम से बिस्तर पर पसर जायेगा. और बिना कि व्यवधान के उपन्यास खत्म कर डालेगा.

जैसे ही उसने घर में कदम रखा, उसकी मां ने उ याद दिलाया कि आज राशन लाने का आखिरी दिन उसे ताव आ गया, "ये सब काम क्या हमेशा मैं ही करूंगा वह चिल्लाया, "यह मुस्टंडा कुछ नहीं कर सकता!" मुस्टं यानी उसका छोटा भाई, जो बी. ए. कर लेने के बाद बेकार था.

मां बताने लगी, "मैंने तो उससे कहा था, पर वह रहा था कि आज उसे कहीं इंटरव्यू देने जाना है. वह यह भी कह रहा था कि इस काम के लिए कल क्यों न कहा."

"तो कल क्यों नहीं कह दिया?"

"कल उसका एक दोस्त आ गया था, मैं उस सम नहा रही थी. जब तक मैं बाहर आती, वे दोनों गायब हो चुके थे."

"दोस्त!" पद्दू गुर्राया. उसका चेहरा गुस्से से ल हो रहा था. "आवारागर्दी करता है और कुछ नहीं. और उधर मैं. . . मैं बताये देता हूं, इस सबसे मैं तंग गया हूं."

"अगर कार्ड हमारे इलाके की दूकान का हो जाये, तो सिमी या मैं भी जा सकते हैं. तब हर बार तुम्हें परेश करने की जरूरत नहीं पड़ेगी." मां ने कहा. स्वर ब कोमल और शांत था.

"मैं ही तो हूं जिसे यह सब दौड़-भाग करनी पड़ती है पद्दू फिर चिल्लाया. चार महीने पहले ही वे इस नये मक में आये थे, पर राशन कार्ड अभी पुराने मकान का ही राशन के दफ्तर जाकर इसे बदलवाने का अभी उसे समय न मिला था. इस बीच उसकी शादी भी हो गयी. इसलिए पता बदलवाने के साथ-साथ कार्ड में एक और नाम जुड़वाना था. राशन के दफ्तर में एक बार जाने का मतल है पूरा दिन खराब करना, जिसके लिए न उसके पा समय था और न किसी और के पास. शायद दूसरे लोग सोचते हों कि यह मामला चूंकि उसकी पत्नी से संबं है, इसलिए वही इसकी जिम्मेवारी ले.

उसने कॉफी हलक के नीचे उतारी और उदास मन

CC-0. In Public Domain

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ान की दूकान की तरफ चल दिया.

उसके लौटने तक नौ बज चुके थे. वह बुरी तरह थक ा था. उखड़ा हुआ भी था. आते और जाते हुए उसे बस लिए काफी इंतजार करना पड़ा था. और जो बसें मिलीं, बहुत भरी हुई थीं. राशन की दूकान की धूल और सीलन ा घटिया किस्म के मिमियाते लोगों की भीड़ ने उसका ा-सहा मूड भी खराब कर दिया था. उसे अपने पर खुंदक ने लगी कि वह पैदा ही क्यों हुआ, फिर बड़ा क्यों हुआ. र फिर उसने शादी क्यों कर ली!

उसके लौटने पर उसकी पत्नी ने जब उससे बात करने कोशिश की तो उसके गले से गुर्राहट के अलावा कुछ नहीं कला. जब वह इस पर भी चुप न हुई तो उसने जोर से चीख- ः कहा, "जाओ. इस समय मुझे अकेला रहने दो!"

खाते समय भी सभी लोग चुप थे. न कोई बात, न ाक... कुछ नहीं. पहू ने उसी कठोर चेहरे के साथ जल्दी- दी खाना खाया और अपने कमरे में लौट आया. बिस्तर लेटकर उसने उसी अधपढ़े उपन्यास को उठाया और पढ़ने ा. थोड़ी देर बाद उसकी पत्नी भी आ गयी. उसने सोने के कपड़े पहने और सोने की तैयारी करने लगी. चूड़ियां, जेब उतारने, चेहरे पर क्रीम लगाने की चिर-परिचित याओं ने उसका ध्यान भंग किया. उसके मन में पत्नी बातें करने की इच्छा पैदा हुई, पर उसका स्वाभिमान ड़े आ गया और वह बेवकूफ बना-सा किताब पढ़ता ही रहा. ने महसूस किया कि पत्नी का साथ उसके लिए कितना मोल है. बिना बात के उस पर गुस्सा करना उसकी मूर्खता तो थी. हो सकता है, पत्नी उससे बात करने की फिर शिश करे. अगर ऐसा हुआ तो, उसने सोचा, वह किताब पटककर उससे माफी मांग लेगा.

पर वह कुछ बोली नहीं. उसके गुस्से ने जरूर पत्नी को घात पहुंचाया होगा. उसने दरवाजे बंद किये और बिस्तर , उससे दूर पीठ फेरकर लेट गयी. यह भी उसे सहन हीं हुआ. अपने स्वाभिमान को ताक पर रखते हुए उसने रे से पत्नी के कंधे पर हाथ रखा और कहा, "मुझसे गलती गयी."

पत्नी ने कोई प्रतिक्रिया जाहिर नहीं की, वैसी ही ड़ी पड़ी रही और अपने मौन से उसे दंडित करती रही. र उसने अपने पति के गुस्से की बात करते हुए ताना दिया उसे तो बस रात में ही पत्नी की जरूरत महसूस होती है. का चेहरा लाल हो गया. उसे कुछ सूझ ही नहीं रहा था क्या कहे. एक-दो बार उसका मुंह खुला और फिर बंद गया. कोई शब्द वहां से नहीं फूटा. पति की यह हालत कर उसे अचानक हंसी आ गयी और उसने अपने आप उसके हवाले करते हुए मुस्कराकर कहा, "अब बत्ती बंद कर दो!"

पर उसने ऐसा भी नहीं किया. बत्ती बुझाने का मतलब ा, किताब को अलग रख देना. पर वहां भी एक दिलचस्प ति में वह पहुंच गया था. उसे दोनों की जरूरत थी—पत्नी भी और उपन्यास की भी.

लघुकथा

अपना-अपना नशा

▣ हीरालाल नागर

सेठजी को रोज पीने की आदत थी. यदि घर पर पीने वाले मेहमान आ जायें तो फिर क्या कहने. उस दिन तो वे और भी पीते. बस! ह्विस्की का दूसरा दौर चल रहा था कि भीखन ने खबर दी, "आज बिसपुर जंगल का एक हाथी नहीं रहा."

मुनीम ने यह दुखद समाचार सेठ जी तक पहुंचाया. सेठ जी उबल पड़े, "कहां है भीखन, बुलाओ हरामजादे को इधर."

भीखन हाजिर हुआ.

"कौन-सा हाथी मर गया है रे भीखन!"

"सेठ जी! बिसपुर वाले जंगल के चार हाथियों में से एक, जिसे ठेके की लकड़ी ढोने के लिए लगाया था."

सेठ जी ने माथे की सलवटें ठीक की और धीरे से गुर्राये, "कोई बात नहीं भीखन! घर जा! हम देखेंगे उसे. कल चलना हमारे साथ."

"कल मैं नहीं जा पाऊंगा, सेठ जी! मेरा छुटका लड़का बहुत बीमार है. उसकी दवा के लिए कुछ पैसे भी चाहिए. हुजूर!"

"फेंक दे अपने लड़के को नाले में. मेरा एक लाख का हाथी मर गया और तुझे अपने लड़के की फिक्र पड़ी है. मुनीम जी! कर दो इस हरामजादे का हिसाब! कल से ये काम पर नहीं आयेगा."

सेठ ने अपना पूरा असंतोष भीखन पर थूक दिया.

आधी रात गये, भीखन नशे की हालत में घर लौट रहा था. □

● कहानी लेखन महाविद्यालय, अंबाला छावनी-133001

इसलिए उसने बिजली के उजाले में ही उसे प्रगाढ़ आलिंगन में लेकर अपने प्यार का इजहार किया. इसके बाद उसने उपन्यास खत्म कर लेने तक की मोहलत चाही. पत्नी को नींद आ रही थी. उसने कंधे उचकाकर मोहलत दे दी. वह फिर से अपने जासूसी उपन्यास के नायक के पास चला गया यह देखने के लिए कि वह इस कठिन परिस्थिति से अपने को कैसे बाहर निकालता है.

जब उसने उपन्यास खत्म किया तो देखा कि (जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है) वह अपनी पत्नी के उन्मुक्त आलिंगन में कसा हुआ है. वह हिल भी नहीं सकता. उसे उपन्यास के नायक से ईर्ष्या महसूस होने लगी, जिसने इससे भी कठिन परिस्थिति से अपने आप को बड़ी आसानी से मुक्त कर लिया था और यहां वह, अपने बिस्तर पर, करवट तक नहीं ले पा रहा है, क्या मजाक है!

पर यह कोई नयी बात भी नहीं थी. शादी से ही वह इसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुभव कर रहा था. अपनी पत्नी के सोने के इस ऊबड़-खाबड़ तरीके से यह बिस्तर छोटा पड़ता था. शादी के शुरू के दिनों में, जब किसी औरत का स्पर्श उसके लिए एक नयी चीज था, वह इसके लिए थोड़ी-सी नींद की बलि दे सकता था. पर बाद में वह अपने उन पुराने स्वर्णिम दिनों की कामना करने लगा था, जब वह अपने बिस्तर पर अपनी इच्छा से किसी भी मुद्रा में लेट सकता था और कहीं भी हाथ-पैर फैला सकता था. क्या फिर कभी उसे यह आजादी मिल पायेगी? मिल सकती है, बशर्ते उनके पास एक के बजाय दो चारपाइयां हों. पर तब तो चलने-फिरने लायक जगह ही नहीं रहेगी क्योंकि उनका यह कमरा काफी छोटा था.

यह सारी बातें उसने अपनी पत्नी को नहीं बतायीं. वह जितनी शर्मीली है, उतनी ही संवेदनशील भी. वह उसकी इस बात को गलत भी समझ सकती थी. फिर वह अपनी सोने की आदतों के बारे में सचेत हो जायेगी और बिस्तर पर हिलने-डुलने में भी संकोच करेगी. इससे बिना बात में ही उनका रात का आनंद जाता रहेगा. उसने महसूस किया कि उसकी पत्नी संकोची स्वभाव की है. दिन में भी वह अपने अधिकार नहीं जताती. एक बिस्कुट का टुकड़ा या थोड़ा ज्यादा कॉफी लेने में भी संकोच करती है. ऐसी शर्मीली लड़की अगर रात को निश्चिंत होकर सोती है और उसके अंग कहां जा रहे हैं, इससे बेखबर रहती है तो यह अनचित नहीं है. इससे तो यही सिद्ध होता है कि पति की उपस्थिति उसे कितना आजाद और बेफ़िक्र कर देती है. वह इस सबको नष्ट नहीं होने देगा. अगर रात में भी वह अपनी आजादी पर पाबंदी महसूस करने लगेगी तो इससे उसके व्यक्तित्व में अपूरणीय क्षति हो सकती है और इसे वह कभी पसंद नहीं करेगा.

एक काम वह कर सकता है, पत्नी के सोने से पहले ही वह बिस्तर पर सुविधाजनक स्थिति में लेट जाये. पर यह भी उसे पसंद न था. पत्नी के बिस्तर पर आने तक के लंबे घंटों (उस समय तो लंबे ही लगते हैं) को भरने के लिए उसे किताब की जरूरत होती है. किताब हाथ में रहने से उसमें एक बड़प्पन-सा झलकता है. पत्नी के आने तक बिस्तर पर लेटे मक्खियां मारने, उंगलियों के नाखून कुतरने और पत्नी के आते ही उस पर झपट जाने में वह कितना बेवकूफ लगेगा. पत्नी सोचेगी कि वह औरत का भूखा है. नहीं, किताब तो हाथ में होनी ही चाहिए. उसे लगा कि बैठकर पुस्तक के बजाय लेटकर पुस्तक पढ़नी चाहिए. जब पत्नी बिस्तर पर आये तो वह ऐसे दिखाये जैसे पत्नी के आने का उसे पता ही नहीं चला. फिर थोड़ी देर बाद वह पुस्तक बंद करके पत्नी की ओर घूमे. . .

अचानक एक बात उसके दिमाग में कौंधी. शादी के बाद वे कितनी रातें एक साथ गुजार चुके हैं? वह गिनने लगा और इस गिनती ने उसे चकित कर दिया. कहीं गिनने में गलती तो नहीं हो गयी? उसने फिर गिनना शुरू किया. फिर वही संख्या है. . . आज उनकी शादी की सौवीं रात थी.

इस बात ने उसे पुलकित और उल्लसित कर दिया. अपनी यह महत्वपूर्ण और उत्तेजक खोज अपनी पत्नी को बताने को वह उत्सुक हो उठा, "सिम्मी!" उसने पुकारा. वह सोती रही. वह ऐसे ही सोती थी, गहरी नींद में. एक बार वह सो जाये तो बड़े-से-बड़ा शोर उसे नहीं जगा सकता था. वह उसके कंधों को पकड़कर हिलाने लगा. एक झुरझुरी के साथ उसकी नींद खुल गयी और वह उसे एक अजनबी दृष्टि से घूरने लगी. वह बुदबुदायी, "कौन है? क्या है?"

"सुनो, आज हमारी सौवीं रात है." उसने गर्व से कहा.

"हूं. . ."

"सौवीं रात!" उसने बड़े आवेग में आकर कहा, "शादी के बाद से हम निन्यानवे रातों से एक साथ हैं और आज हमारी सौवीं रात है."

"ओह!" उसने कहा और फिर सो गयी, वैसे ही. यह सब कुछ ही मिनटों में हो गया. उसके हाथ और पांव अभी उसी के ऊपर पड़े थे. नींद से वे भारी हो गये थे.

अचानक उसे गुस्सा आ गया—यह तो मेरी ही अवहेलना कर रही है. जितना वह उसके व्यवहार के बारे में सोचता, उसकी धारणा पक्की होती जाती कि वह उसकी अवहेलना कर रही है. उसके अपने मां, बाप, भाई कोई भी तो उसका आदर नहीं करते. यह भी उन्हीं से सीख गयी होगी. उसे यह पहले ही समझ जाना चाहिए था कि सद्व्यवहार और ईमानदारी जैसी बातों की कोई कद्र नहीं करता. पत्नी के मामले में वह कितना सचेत रहता था. फिर भी, यह कृतघ्न औरत उसके इन अनमोल, खुशी के क्षणों को बांटने के लिए तैयार नहीं है!

उसे तो इसकी कोई फिक्र भी नहीं है, पति की अपेक्षा उसे अपनी नींद ज्यादा प्यारी है. कितनी स्वार्थी है! अचानक उसे याद आया कि बिस्तर पर आते समय भी वह कितना घमंड दिखा रही थी. और आखिरी मिनट तक भी नहीं पसीजी थी. उसका पहले का व्यवहार भी कम क्रूर नहीं रहा. कुतिया कहीं की. वह भी कितना बेवकूफ था कि उसके प्रति इतना उदार, इतना दयालु बना रहा. उस जैसी औरतों के साथ तो दया का व्यवहार होना ही नहीं चाहिए.

ठीक है. उसे सावधान रहना ही चाहिए. वह समझती है कि पति कुछ नहीं कहेगा और वह उसे अपनी उंगलियों पर नचाती रहेगी! जरा देखो तो कैसे सो रही है. क्या इससे इसके चरित्र का पता नहीं चलता. इसे कुछ ज्यादा ही छूट मिल रही है. गुस्से से भुनभुनाते हुए उसने बड़ी बेदर्दी से अपने ऊपर से पत्नी के हाथ और पांव झटक दिये, "क्या तुम एक तरफ नहीं रह सकतीं. . . मेरे लिए कोई जगह ही नहीं छोड़ती. . . मैं भला कहां सोऊंगा?"

नींद खुलने पर अचानक घबराकर वह अपने में सिमट गयी और बिस्तर के एक कोने पर सरक गयी.

तब वह पलटा और पेट के बल लेट गया. आखिरकार अब वह अपने को सुविधा और आराम की स्थिति में महसूस करने लगा था. तब उसने अपने को नींद के आगोश में जाने के लिए मुक्त कर दिया था. □

● अनुवाद : सु. उ.

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

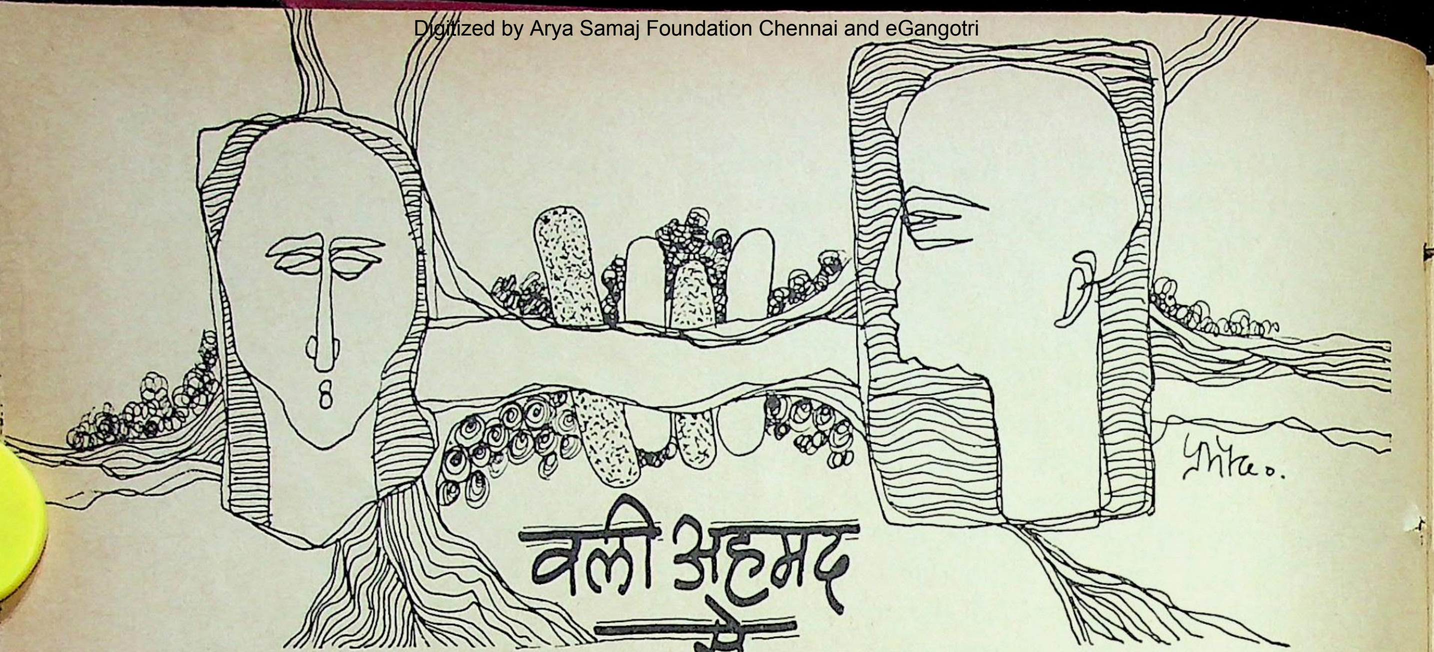

वली अहमद से खिताब

•रघुराज गुप्त

...डूब गया था मैं शर्म के समुंदर में, पर हूं बेशरम, फिर भी बचा रहा. बस यही कहने आया हूं... 'स्मृति-स्क्रीन' पर स्मृतियों का एक पन्ना—

राणा रायपुर तुम्हें क्या कहकर संबोधित करूं! दोस्त या दुश्मन? मैं गया था तुम्हें देखने, तुम पहले क्या थे, और अब क्या हो. इरादा करके गया था कि खुद ही तुम्हारे दरबार में हाजिर होऊंगा. देखूंगा तुम्हें आंखों में आखें डालकर. परखूंगा तुम्हारी आंखों में खून उतरता है या करुणा? भांपूंगा तुम्हारी प्यास बुझी है या कुछ बाकी है? आंकूंगा तुम मर्द के बच्चे हो या कायर? बहादुर हो या बेचारे?

मुझे शहर के लोगों ने यह बताया कि तुम हज कर आये हो और अब हर वक्त तस्वीह तुम्हारी उंगलियों में घूमती है. बात-बात पर तुम ठंडी सांसें लेकर सीने पर हाथ रखकर खुदा की खुदाई की बात कहते हो. रसूले-पाक और कुरान शरीफ की आयतें दुहरा उनकी तशरीह करते हो. तो मुझे कुछ ताज्जुब भी हुआ, कुछ हंसी भी आयी, तुम्हारे खुदा पर और रसूले-पाक पर. इसी दारुल हरब में यह क्या गजब नाजिल हो गया गाजियों पर? क्या हो गया जिहाद के मुजाहिदों के जानशीनों का?

सदमा पहुंचा, सदाएं निकलीं, उस अल्लाह की कुदरत को देख. मुझे तो न पहले पता था, न अब पता है कि वह क्या सोचता होगा अपने दिल में, सातवें आसमान पर बैठा हुआ. मैं नहीं जानता कि उसने तुम्हारी किस्मत का क्या फैसला किया है. कौन-सी जगह तजवीज की है, दूसरी दुनिया में! जन्नत में या दोजख में या कहीं दोनों की सरहद पर? मुझे इसमें न पहले दिलचस्पी थी, न आज है, और न शायद कल. तुम्हारा खुदा, उनका परमात्मा, मुबारक हो तुम्हें. मुझे न उससे मिलने की ख्वाहिश है, न तलब, न तबियत ही. ऐ मेरे खानदान के दुश्मन, मेरे वालिद के कातिल, बता तेरा सर कलम करूं, या यूं ही छोड़ दूं? तुझे बेइज्जत, बेघर, बेबस करूं या भूल जाऊं, उस खूनी और काली दास्तां को, जो आज से चालीस साल पहले बरपा की थी तूने मेरे बाप पर.

दीवाली की उस जगमगाती रात को मैं खुशी के समुंदर में नहा-कर सोया ही था. तूने और तेरे दल के सरदार ने दस्तक दी थी मेरे दरवाजे पर. भोले बाप ने अगवानी की थी, अपने अतिथि की. और तूने और तेरे साथियों ने उसके जवाब में एक साथ उस निहत्थे पर बीसियों लाठियां बरसाई थीं.

मेरे अजीज पिता को तूने इस बात का भी मौका न दिया कि वह मेरी मिठाइयों से, मेरे खिलौनों से, मेरी खीलों से करते तुम्हारी कुछ खिदमत.

मेरी मां ने बिना किसी डर और उज्र के, फेंक दिये थे तेरे सामने, अपने हार, अपने कर्णफूल, अपने गुलबंद, अपनी पायजेब, चबाई हड्डी की तरह. इन्हें तेरे साथियों ने लपककर निगल लिया, और ले गये वे उन ट्राफियों को अपने साथ, अपनी मासूम औरतों को सजाने के लिए.

क्या तेरे खुदा के फरिश्ते आकर उसे जन्नत ले गये थे? नहीं, वह यहीं का यहीं रह गया, जीवित-मृत, इसी काफिरिस्तान में, जहां तुम्हें और उसे रहना था अभी, तीसों साल और.

हुआ तुझसे साक्षात्, चालीस साल बाद. सन् उनहत्तर की पहली सुबह. मैं बैठा था चुपचाप, उदास, कुछ सोच में, देख रहा था स्मृति-स्क्रीन पर, संपूर्ण नहीं तो कम से कम साफ तौर पर, चालीस गुजरे सालों के चलचित्र. तुम्हारी राजधानी की बरकत, शानोशौकत, भीड़-भड़क्का, धक्का-मुक्की—दो रंग-बिरंगे, ताजिये, कुतुबमीनार से भी ऊंचे. मैं खड़ा हूं लेकर दोनों नन्हें हाथों में, दादी के दिये दाने चढ़ाने के लिए, मके तन्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो उसने मनाई थी अपने कुनबे की.

1931-32 की यादें

उभर आती हैं, स्मृति स्क्रीन पर, मुद्दत से दबी यादें. ताजिये उठ गये, बाजार भर गया, सब कौमों-फिरकों और जातों की टोलियां जमा हो गईं.

ताऊ बालसरूप की दूकान पर नाश्ता खत्म हुआ. फर्श बिछ गयी, गलीचा लग गया, मसनद सज गयी. हुक्के ताजा हुये, राव साहब आ गये, उधर मूलराज भी बाजी बिछ गयी. मैं भी समाने बैठ गया.

खिलाड़ी जुट गये, उधर गाहक आ गये, कपड़ा नप रहा, जल्दी-जल्दी फट रहा, चिर्र-चिर्र. खिलाड़ियों को पता नहीं, दुपहर हो गयी, दो बज गये, बेगम का पैगाम आया, बहू की बुलाइट पहुंची, रानीजी का संदेसा, "हुजूर बेगम साहब इंतजार में हैं, बहूजी बैठी हैं, रानीजी बाट जोहतीं."

एक बार सिर उठे, फिर झुक गये. खिलाड़ियों के दांव-पेंच, थोबड़े जोर पर, दो-तीन पहर गुजर गये, दस्तरखान बिछ गया. एक ओर बालसरूप, दूसरी तरफ मूलराज. इधर बैठे रावजी, मैं उनके सामने. खाना खत्म हुआ, पान-बीड़े आ गये, खेल शुरू हो गया.

सूबा असेंबली का चुनाव, राव वली अहमद खान मुस्लिम खान लीग के उम्मीदवार. गोरे कलक्टर साहब, कप्तान साहब, काले दरोगा, लाल-लाल पगड़ीधारी सिपाही, अंसारों की भीड़, बंदूक पर नंगी तनी हुई. जमना पुल—इस पार चमार, कस्साब गाड़े, गूजरों का जमाव. निन्ना पठाण, पुन्ना चमार, मेरा प्रिय सबसे आगे. लाठियां साथ तैल स्नात, फुल्लियां चमचमाती, खून की प्यासी राणा रायपुर के.

मुकाबिले में भाई मासूम खां जमीयत समर्थित. हिंदुओं में राजा जसमीर के विरुद्ध पंडित धनराज, कांग्रेसी उम्मीदवार. पतले-दुबले, ठिगने सरफुले (नंगे सिर) सफेद गाढ़े की मटमैली धोती, घुटने तक कुर्त्ता, हाथ निर्मित चप्पलें.

उस पार सफेद शामियाने, छोलदारी तनी हुई. एक में दो काली संदूकचियां रखी हुई. करेंगी जो फैसला आज की हार-जीत का.

निन्ना आया दौड़ता, "पंडितजी पकड़ गये, पंडितजी पकड़ गये." आंसू ढुलक गये, मैं डर गया.

1 जनवरी, 1979

खिदमतगार ने आकर जोर से सलाम किया. स्वप्न भंग हुआ, दृश्य लुप्त हुए. "राण जी आ गये, आप से मिलने को." खेल खत्म हुआ, फिल्म टूट गई. सामने खड़ा है, सात गज के फासले पर, साढ़े छह फुटा अस्थिपिंजर. सर पर भूरा टोपा, नीचे खिचड़ी भौंहें. वही लंबी नाक, सोने का चश्मा कहां? चढ़ गया है काला फ्रेम, एक मोटा शीशा सफेद, दूसरा कोहाले से ढका हुआ. सूखे होंठ, लाल-लाल सुर्ख गाल कहां गये? भर गये थौली दाढ़ी से. कहां गया चिकना चिबुक? ढक गया, खो गया. कहां गई वे खूनी आंखें लाल-लाल चमचमातीं? मद्धम हो गई है लौ, बुझने को है चिराग, धुंधला-धुंधला अंधेर-सा है सामने.

पतले-पतले हड़ियल हाथ उठे ऊपर, "सलाम वालेकुम."

"वालेकुम अस्लाम."

मैं कुर्सी से उठा. आगे बढ़ा, लिया हाथ में हाथ, अपने दुश्मन का. उसने हिम्मत बटोर, भर लिया बाहों में, दुश्मन को. आंसू छलक आये उस आदमखोर बूढ़े शेर की आंखों में. दो बूंदें ढुलक गईं मेरे भी गालों पर.

हम दोनों बैठे गये. एकदम खामोश. शब्द मिलते नहीं, बात क्या करें? फिर भी क्या मन, चुपचाप बैठेगा?

कोई क्या कहेगा, कोई क्या समझेगा, इस राज को?

कुछ तो दिखाना होगा, कुछ तो अभिनय करना होगा, महज झूठी शान को कायम रखने के लिए. अपने गांव में, उसकी भी, अपनी भी, राणा की पंडित की.

मैंने पूछा, "आप ठीक हैं?"

"जी हां, आप तो ठीक हैं?"

"आपकी दुआ है."

"और पंडितजी?"

"वह भी खुदा के फजल से. भाई साहब कहां हैं? घर का क्या हाल है?"

"वहीद पाकिस्तान चला गया, उसका लड़का रफीक अलीगढ़ में डाक्टरी के आखिरी साल में पढ़ रहा है."

"खुशी की बात है. आप क्या करते हैं?"

"कुछ नहीं, बैठे-बैठे ढो रहा हूं अपने किये का बोझ बूढ़े शेर की तरह. घुल-घुल कर मर रहा हूं. संगी-साथी सब बिखर गये. वह भी जमाना था, जब इस सारी तहसील के शिवालिक जंगलों पर मेरा राज था. मेरे गिरोह के अदना से अदना खिदमतगार को देख सारे इलाके की रूह कांपती थी.

"बेटे, पता नहीं इस पाक लफ्ज का, हकदार भी हूं या नहीं? मेरे बाप ने जब मुझसे कहा था यह आखिरी मुलाकात में, 'राणाजी, मैं आपका एहसानमंद हूं. आपने अनजाने में मुझे, मेरी औलाद को किसी लायक बना दिया. जिसे हम बुराई समझते हैं, उसमें से कई बार अच्छाई निकल आती है.'

"डूब गया था मैं शर्म के समुंदर में. पर हूं बेशरम, फिर भी बच रहा. बस यही कहने आया था, मुझे माफ करना, अपने वालिद को मेरा शर्म से भरा सलाम कहना. खुदा हाफिज."

जब राणाजी की इन सब बातों को सोचता हूं, तो विश्वास नहीं होता कि इंसान के साथ भी ऐसा सब कुछ होता है.

"मैं सचमुच आपका मशकूर हूं कि आपने मुझे मानव-मर्म समझा दिया. मेरे दिल में जो नफरत थी, उसे धुला दिया. जामे-मुहब्बत पिलाकर." ☐

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

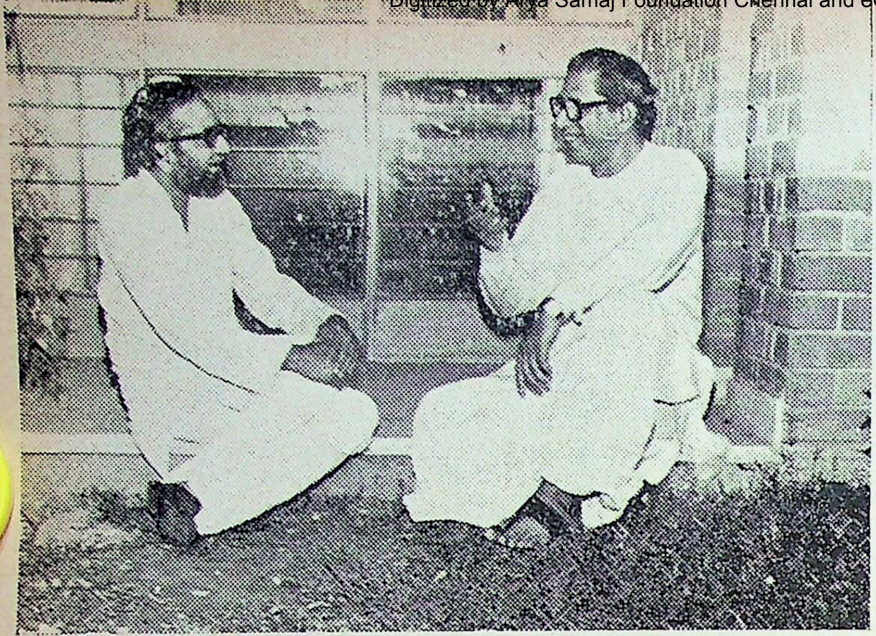

● दो समीक्षक आमने-सामने : अब कहानियों की स्थिति क्या है ?

कहानियां सैकड़ों लिखी जाती हैं, पर उनमें से एकाध ही क्यों वास्तव में 'कहानी' का दर्जा हासिल कर पाती है? आज कहानी में कौन-से गुणात्मक परिवर्तन आये हैं और कौन-से ऋणात्मक? तथा एक के बाद एक चलाये जानेवाले आंदोलनों के मंजर से कहानी आज किस अंजाम पर आ पहुंची है और उसकी मंजिल क्या होनी चाहिए?--प्रस्तुत है कथा-साहित्य से जुड़े ज्वलंत सवालों पर दो दिग्गज आलोचकों की बहसतलब बातचीत--

कहानी कहां बनती है

डा. नामवर सिंह से डा. विजय मोहन सिंह की बातचीत

विजय मोहन सिंह : नामवर जी, हमारी बातचीत. . . मैं चाहता हूं कहानी की जो स्थिति है. . . उस पर मुख्य रूप से केंद्रित हो. लेकिन उस पर मुख्य रूप से केंद्रित होने के लिए यह जरूरी है कि पहले जो कहानी थी और इसके बारे में आपने लिखा था. . . काफी लिखा है. . . उस पर भी थोड़ी बातचीत कर ली जाये.

नामवर सिंह : आपने भी लिखा है. . .

विजय मोहन सिंह : मैंने भी लिखा है. लेकिन आपने शुरुआत की थी. एक तरह से. जैसा आप जानते हैं कि मैं लिख भी चुका हूं. . . मैं मानता हूं. सारा हिंदी-साहित्य मानता है कि आप हिंदी के प्रथम कहानी-समीक्षक हैं. . . और आपने कहानी की ओर गंभीरतापूर्वक लोगों का ध्यान आकर्षित किया था और एक गंभीर किस्म की कहानी-आलोचना की शुरुआत की थी. तो, अब जो कहानियां लिखी जा रही हैं, उनकी स्थिति क्या है. . . और जो कहानी संबंधी आलोचना लिखी जा रही है उसकी स्थिति क्या है ? इसके अंतर पर भी बात करना जरूरी है. . . और जैसे यह पूरी प्रक्रिया इस बीच घटित हुई. . . उससे अगर कोई अंतर इधर आया है तो (और अंतर है) तो इस प्रक्रिया पर भी बातचीत करना जरूरी है. जैसे मैं अभी बात कर रहा था महेश से. . . तो मैंने कहा कि मुझे इधर लगा है कि हालांकि कहानी-संग्रह छपते बहुत हैं. . . लेकिन कहानी-संग्रह की अपेक्षा कविता-संग्रह, आंकड़े क्या हैं? और ज्यादा बेहतर ढंग से 'रिसीव' भी किये जा रहे हैं. कहानी-संग्रह उस तरह से 'रिसीव' नहीं किये जा रहे हैं. . . इसकी वजह क्या हो सकती है. इसकी वजह. . . कहानीकारों में ढूंढनी चाहिए. . . या एक खास तरह की बन गई स्थिति है. . . प्रकाशन की, और बिक्री की. . . . एक तो इस पर सोचना जरूरी है. क्योंकि हम कहानी में, खुद के 'स्ट्रक्चर' में जो गुणात्मक परिवर्तन आये हैं, उनके बारे में भी सोच सकते हैं. पहले तो मैं यह जानना चाहूंगा आपसे कि क्या आप यह मानते हैं कि इस तरह से कोई अंतर आया है?

नामवर सिंह : . . . मैंने इस तरह का कोई अध्ययन तो किया नहीं है कि कविता-संग्रहों की तुलना में कहानी-संग्रहों के ग्रहण की क्या स्थिति है! सांख्यिकी के आधार पर ही कोई आदमी बड़े विश्वास के साथ कह सकता है. एक कारण तो मुझे साफ दिखाई पड़ता है जो साहित्यिक नहीं है. . . वो ये कि कम पैसे में औसत पाठक को पत्रिकाओं के माध्यम से इतने लेखकों की इतनी ज्यादा कहानियां एक जगह मिल जाती हैं. . . कि उतनी ही कहानियां एक ही लेखक की पंद्रह-बीस रुपये में कोई क्यों लेना चाहेगा? मेरा खयाल है, शुरू से ही यह स्थिति रही है. . .

विजय मोहन सिंह : . . . लेकिन पत्रिकाओं में तो कविताएं भी छपती हैं.

नामवर सिंह : जिन पत्रिकाओं में कविताएं छपती हैं, उन पत्रिकाओं की स्थिति बिक्री की दृष्टि से बहुत ही दयनीय और शोचनीय है. इसलिए कहानी-संग्रहों के प्रकाशन और बिक्री का जहां तक सवाल है. . . उससे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानियों की स्थिति पर प्रकाश पड़ने की उम्मीद मुझे तो नहीं दिखाई पड़ती. एक दूसरी स्थिति जिसका संबंध बिक्री से नहीं है, वह यह है कि जो साहित्यिक पाठक है, और जो साहित्यिक समाज है, उस समाज में. . . जो लोग कविताएं भी पढ़ते हैं. . . उस समाज में कदाचित कहानियों और कहानी-संग्रहों में दिलचस्पी उतनी नहीं है जितनी कि कविता-संग्रहों में दिखाई पड़ती है. इस समाज में यह ललक. . . . कि कहानी की दुनिया से कोई नयी चीज आयी है. . . नहीं है, यह बात अगर आप कहना चाहें, तो अंशत: सही है. पर इसके कारणों की खोज होनी चाहिए.

विजय मोहन सिंह : . . . वही मैं भी कहना चाहता था कि जैसी कहानियां इन दिनों प्रकाशित हो रही हैं, वे उस तरह से पाठक को अपनी तरफ आकर्षित नहीं कर पा रही हैं. जिस तरह से एक जमाने में जब **कहानी** पत्रिका निकलती थी, **नयी कहानियां** निकलती थीं, यही नहीं **ज्ञानोदय** निकलता था और **कल्पना** निकलती थी. . .

नामवर सिंह : मेरा खयाल है आप 'नौस्टेल्जिक' हो रहे हैं. . . उन युगों की याद करते हुए. मुझे लगता है, हम लोग उस उमर की ओर बढ़ रहे हैं जिसमें वर्तमान से ज्यादा आकर्षक अतीत हुआ करता है.

विजय मोहन सिंह : नहीं, आकर्षण की बात मैं नहीं कर रहा हूं. मैं केवल उस 'अतीत' की बात कर रहा हूं जो 'वर्तमान' था. . . जैसा कि टी.एस. इलियट ने कहा है कि अतीत का एक हिस्सा वर्तमान में रहा करता है.

नामवर सिंह : हां. . . वैसे हर अतीत कभी न कभी वर्तमान ही रहता है.

विजय मोहन सिंह : . . . इसलिए मैं उस 'एलीमेंट' को जोड़ने की कोशिश कर रहा हूं वर्तमान से. . . शायद इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि इस वक्त जो कहानियां लिखी जा रही हैं वे कहीं गुणात्मक दृष्टि से. . . या अपने दूसरे रूपों में, उन कहानियों की अपेक्षा (मैं यह नहीं कहूंगा कि वे कमजोर हैं. . .) शायद कुछ ऐसा बहुत ज्यादा 'नया' नहीं दे पा रही हैं जो नयापन पाठक में वह ललक पैदा कर सके जो उस वक्त कर सका था. . . चाहे वो 'फार्म' के स्तर पर हो, 'टैक्नीक' के स्तर पर हो. . . चाहे वो 'सेंसिबिलिटी' के स्तर पर हो. . . लगता है कि मैं इन दिनों कहानी पढ़ता हूं . . . तो कहानी में जो एक 'प्लेजर आफ रीडिंग' होता है वह न्यूनतम होता जा रहा है.

नामवर सिंह : आपने तो समकालीन कहानियां ज्यादा पढ़ी हैं मुझसे. . . मैं इस मामले में बहुत पिछड़ा हुआ आदमी हूं.

विजय मोहन सिंह : नहीं. . . नहीं, आप तो हिंदी जगत में भयानक पढ़ाकू विख्यात हैं. . . बहुत पहले आपके लिए त्रिलोचनजी ने कहा था. . . 'पुस्तक पकी आंखें.'

नामवर सिंह : . . . वह ठीक है, पर इतनी-सी बात कहने के लिए इतना लंबा सफर तय करने की जरूरत नहीं है कि कहानी की दुनिया में पिछले पांच-छ: वर्षों में (अगर एक दशक में नहीं तो. . .)कोई ऐसा सार्थक नया प्रयास नहीं हो रहा है जिसकी ओर साहित्यिक दुनिया आकृष्ट हो. यह बात कहने के लिए हम लोग यदि कहानी-संग्रहों की बिक्री आदि के ब्यौरे में न जाएं तो एक औसत असर के आधार पर कह सकते हैं. इसके लिए हम लोग कारणों के रास्ते बहुत लंबा सफर न करें. खुद अपने अनुभव से कह सकते हैं आप, कि वैसी उत्सुकता नहीं रही है. मैं भी अपने अनुभव के आधार पर कह सकता हूं. बाकी तो सारी दुनिया किसने देखी है. एक हद तक यह सच्चाई है. लेकिन इस सच्चाई के साथ मैं एक बात और जोड़ना चाहूंगा. पहले के वर्षों से इधर के वर्षों की तुलना करें तो उसमें एक सहायक कारण यह भी है कि साहित्यिक रचनाओं में दिलचस्पी, उन रचनाओं की चर्चा के कारण हुई है. . . चाहे वह चर्चा बहस का रूप ले, चाहे वह समीक्षाओं-आलोचनाओं का रूप ले. . . उससे एक वातावरण तैयार होता है. . . फिर लोगों में दिलचस्पी पैदा होती है. . . यह सच्चाई है कि पिछले सात-आठ वर्षों में कहानी को लेकर कोई ऐसी उत्तेजक बहस नहीं हुई. ये दोनों चीजें परस्पर संबद्ध हैं. सच्चाई यही है कि कहानी की दुनिया में कोई इस तरह का ('क्रांतिकारी' तो बड़ा शब्द है) विचारोत्तेजक नया प्रयोग या नया प्रयास हुआ ही नहीं, इसलिए सहृदयों की दिलचस्पी भी नहीं हुई.

विजय मोहन सिंह : एक चीज, जो मुझे लगती है. . . क्योंकि मेरे कवि मित्र भी हैं और नये कहानीकार मित्र भी हैं. यह देखता हूं कि जो कवि मित्र हैं, वे अपने 'फार्म' को लेकर . . . यानि अपने माध्यम को लेकर जिस हद तक गंभीर हैं. . . जिस हद तक संघर्षशील हैं, उस हद तक कहानीकार मित्र नहीं हैं.

नामवर सिंह : कला माध्यम के रूप में कहानी के प्रति एक कलाकार को जितना आत्मसजग होना चाहिए सामान्यत: कहानीकार उतने नहीं हैं.

विजय मोहन सिंह : हां, एक यह भी कारण हो सकता है. . . क्योंकि जब हम इतने सजग नहीं होंगे और इतने ज्यादा गंभीर नहीं होंगे और हम उस विधा के माध्यम से जो कुछ कहना चाहते हैं उसे खूब सही तौर पर, बहुत सार्थक तौर पर. . . कहने के लिए प्रयत्नशील नहीं होंगे तो निश्चित रूप से हम अपनी बात को भी और उस विधा को भी कमजोर करेंगे. पहले के कहानीकार कहीं ज्यादा गंभीर और सजग रहते थे. . .

नामवर सिंह : हम लोग बहुत ही सामान्यीकरण. . . 'स्वीपिंग जनरलाइजेशन' कर रहे हैं. नये लोगों में. . . अच्छी-खासी युवा-पीढ़ी आयी है. . . इन लोगों के बारे में आप क्या कहना चाहते हैं. . . इन लोगों के पास भी अपने कुछ अनुभव हैं, जिनको ये लिख लेना चाहते होंगे. क्या ये कहानी की एक बनी-बनाई लीक पर ही चले जा रहे हैं? क्या ये उसमें कुछ नया नहीं कर रहे हैं?

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

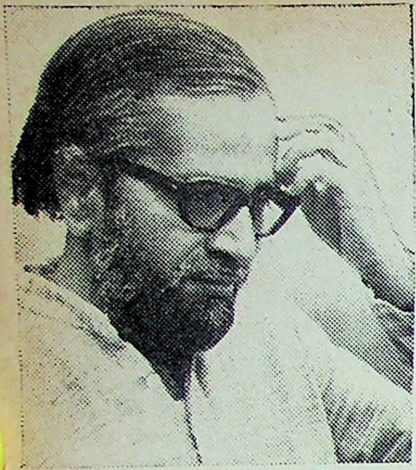

● कारण साहित्येतर हैं

विजयमोहन सिंह : सामान्यतः मुझे तो यही लगता है. इसके अपवाद हैं, और हो सकते हैं. . . लेकिन जो बहुसंख्यक हैं, उनमें यही चीज है.

नामवर सिंह : वैसे देखिए तो कहानी के पारंपरिक ढांचे में भी आज अच्छी और महत्वपूर्ण कहानियां लिखी जा रही हैं. उस ढांचे में कहानी लिखने वाले पहले भी रहे हैं. और अच्छी कहानियों उन लोगों ने लिखी हैं जैसे **भीष्म साहनी, अमरकांत**. . . इधर का एक नाम ले लूं तो **मिथिलेश्वर**. . . जिसमें कहानी के 'फॉर्म' की कोई सजगता दिखाई नहीं पड़ती. कुछ दिनों पहले उनकी मैंने **साप्ताहिक हिंदुस्तान** में **'हरिहर काका'** नाम की लंबी कहानी पढ़ी जो सशक्त कहानी थी, बावजूद इसके कि उसका ढांचा बना-बनाया ही है. कहना यह चाहता हूं कि कहानी के 'फॉर्म' में कोई नया प्रयोग किये बिना भी कोई लेखक अपने गहरे यथार्थबोध के आधार पर आज सार्थक कहानी रच सकता है, बल्कि रच रहा है. आप क्या टिपण्णी करना चाहेंगे?

विजयमोहन सिंह : मेरा मतलब. . . यह नहीं था. जब मैं ढांचे की बात कर रहा था तो मैं दरअसल, उस रूप में ढांचे की बात नहीं कर रहा था. मैं उस माध्यम के प्रति उनकी गंभीरता, उनकी ईमानदारी और उनके अपने लगाव के बारे में बात कर रहा था. कभी-कभी एक रचनाकार फॉर्म के प्रति नितांत असजग होता है. . . तो उसका असजग होना उसके लिए बहुत बड़ा गुण बन जाता है और उसकी कहानी को बहुत बड़ी ताकत देता है. कहानी बड़ी महत्वपूर्ण बनकर सामने आती है. . . जरूरी नहीं कि वह जान-बूझकर कोई प्रयोग करे. . . यह तो बहुत ही एक कृत्रिम तरीका है और बहुत ही 'फॉर्मुलिस्टिक एप्रोच' हो जायेगा कहानी के प्रति भी.

नामवर सिंह : फिर तो उस गंभीरता को परिभाषित करने की जरूरत होगी. एक उदाहरण से बात ज्यादा साफ होती है. **असगर वजाहत** के **'दिल्ली पहुंचना है'** कहानी संग्रह की इसी शीर्षक वाली कहानी है. यह नितांत नारेबाजी की कहानी है. इसमें प्रदर्शन करने के लिए दिल्ली जानेवाली जनता की भीड़ और पुलिस की मुठभेड़ का वर्णन है. . . यह कहानी बन ही नहीं सकी. वह रिपोर्ताज भी नहीं है. जो भी है कमजोर है. और मुझे आश्चर्य हुआ कि जो असगर वजाहत कहानी के फार्म के बारे में बड़े सतर्क हैं और उन्होंने अच्छी लघुकथाएं भी लिखी हैं और खासी कहानियां भी, उन्होंने ऐसी सपाट कहानी कैसे लिखी? अब आप क्या कहेंगे कि असगर वजाहत उस 'फॉर्म' के प्रति गंभीर हैं कि नहीं?

विजयमोहन सिंह : नहीं देखिए, इसको मैं कहूंगा कि. . . इसके पीछे नितांत साहित्येतर कारण होंगे. . .

नामवर सिंह : आप कह सकते हैं, लेकिन मैं लेखक के दिमाग में सेंध मारकर के तो नहीं घुस सकता. . .

विजयमोहन सिंह : कुछ चीजें सेंध मारे बगैर भी जानी जा सकती हैं. तो इसके कारण साहित्येतर भी हो सकते हैं.

नामवर सिंह : आपके कहने से मैंने **'करौंदे का पेड़'** पढ़ा. मैं तो उसके लेखक को जानता नहीं था. . यह नहीं कह सकता कि यह लेखक 'फॉर्म' के बारे में सचेत नहीं है. सचेत तो है. . . सतर्क है भाषा के प्रति, कहानी के विन्यास के प्रति भी, और ऐसा लगता है कि वह कहानी लेखन के प्रति गंभीर है. बावजूद, वे कहानियां मुझे सामान्य लगीं. और ऐसा लगा कि इस लेखक के पास कहने के लिए कुछ बहुत सार्थक नहीं है. इसलिए जब मैं कह रहा था कि इस दौरान नये लेखक कुछ ऐसे हैं जो कहानी को गंभीरता से लेते हैं पर उनके पास पूंजी नहीं है या कोई और कमी है जिससे उनकी कहानियां औसत से ऊपर नहीं उठीं.

विजयमोहन सिंह : ये दो बातें हुईं. एक तो. . . एक कहानीकार है जो 'फॉर्म' के प्रति सजग है लेकिन उसके पास जो पूंजी है, वह बहुत कम है या उसके पास जो अपना कथ्य है, वह इतना सीमित है कि वह फॉर्म पर सजगता के बावजूद कहानियां नहीं लिख पा रहा है. दूसरा कहानीकार वह है—जो फॉर्म के प्रति तो सजग है ही नहीं, पर पूंजी बहुत है उसके पास. . . क्योंकि इस बीच चीजें जिस तरह बदल रही हैं या बदली हैं, वास्तविकता के जो-जो रूप हमारे सामने आ रहे हैं. . . जिंदगी की वास्तविकता के. . . चाहे वे सामाजिक स्तर पर हों. . . या राजनैतिक स्तर पर हों. . . तो कहानीकार के पास आमतौर पर मैं समझता हूं जो सामग्री है कहने की, उसकी कमी तो होनी नहीं चाहिए. है ही नहीं. पर वह उस सामग्री को शायद किसी हड़बड़ी में, शायद किसी जल्दबाजी में या शायद उसे लगता है कि जो जैसा कुछ है उसे रिपोर्ताज की शैली में यथावत विवरण के साथ प्रस्तुत कर दे.

नामवर सिंह : नहीं-नहीं विजयमोहन जी, यह मामला केवल हड़बड़ी का ही नहीं है. जिसे आपने जीवन-सामग्री कहा, वह वस्तुतः बहुप्रचलित और प्रदत्त औसत जिंदगी की समझ है. इससे हटककर जिंदगी की सच्चाई के किसी नये पहलू को सामने लाने के लिए जिंदगी की ज्यादा गहरी पहचान और अंतर्दृष्टि चाहिए. आज उसकी कमी है. यह पूंजी की, माल की या सामग्री की कमी भर नहीं . . . और इसलिए आज की चालू कहानी समीक्षा के मुहावरे इस कमी पर परदा डालते हैं. जैसे अमुक जीवन से जुड़े हुए कितने हैं. या जीवन के कटे हुए कितने हैं!

विजयमोहन सिंह : ये मुहावरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरर्थक हो गये हैं. लेकिन मेरा ख़याल है कि एक जमाना था जब हम भी और आप भी इन शब्दों का प्रयोग करते रहे हैं. . .

नामवर सिंह : हम तो नहीं करते थे. अपनी बात आप जानें.

विजय मोहन सिंह : लेकिन यह जरूर है, कि ये बिल्कुल गैरजरूरी मुहावरा है और अब इसका अर्थ नहीं रह गया है. यहां आकर हम कहानी की उस आलोचना की भी बात कर सकते हैं. . . जिसके पास यही दो शब्द हैं. एक तो जीवन से जुड़ा रहना, एक जीवन से कटा रहना. इस वक्त से जुड़े रहने का अर्थ सामान्य तौर पर तो यह होना चाहिए. . . कि खास तरह की एक सामाजिक चेतना . . . तो अगर किसी लेखक में 'सामाजिक चेतना' है तो उसमें अंतर्दृष्टि का अभाव तो नहीं होना चाहिए. . . सही अर्थों में अगर वह सामाजिक चेतना से संपन्न है तो दृष्टिसंपन्न भी उसको होना चाहिए.

नामवर सिंह : दृष्टिसंपन्न तो बहुत से लोग होते हैं. . . आज की राजनीति को और आज की जिंदगी को बखूबी समझते हैं. लेकिन वे कहानीकार नहीं होते. इसलिए वह दृष्टि, जो जिंदगी की किसी घटना या स्थिति को कहानी बनाती है, वह 'चितवन और कछू' होना चाहिए. . . लेकिन कहानीकार की वह दृष्टि जो एक छोटी-सी जीवन-घटना में खास चीज ढूंढ लेती है . . . फिर उसे कहानी का रूप देती है, मैं उसकी बात करना चाहता हूं.

विजय मोहन सिंह : उसे रचना-दृष्टि कहिए.

नामवर सिंह : बिल्कुल. . . गरज कि आज कहानी में उस 'रचना-दृष्टि' की कमी है जिस की बात हम लोग कर रहे थे. वैसे तो यह हमेशा दुर्लभ रही है लेकिन आज के जमाने में वह ज्यादा ही दुर्लभ है.

विजय मोहन सिंह : मैं इसके साथ इतना और जोड़ना चाहूंगा कि सामान्यतः रचनाओं में. . . एक खास तरह की सामाजिकता (मैं उसे 'सामाजिक चेतना' मानने को अभी तैयार नहीं हूं) जो शायद गहरे अर्थों में सामाजिकता नहीं है. . . उस सामाजिकता के तहत या उस सामाजिकता के नाम पर मुझे कभी-कभी बहुत ही निष्ठुर और क्रूड किस्म की रचनाएं पढ़ने को मिलती हैं.

नामवर सिंह : उदाहरण देकर समझाएं तो ज्यादा अच्छा हो.

विजय मोहन सिंह : ज्यादातर कहानियां. . . जिनमें एक आदमी है जो एक खास वर्ग का है और एक स्थिति में है और एक आदमी दूसरे वर्ग का है . . . दूसरी स्थिति में है. इसलिए वो एक फार्मूले की तरह हम दिखाएंगे ही कि वह बड़ा ही क्रूर है, बड़ा ही निर्दयी है. . . और दूसरा आदमी हमेशा. . . उसके प्रति हमारी एक बड़ी फार्मूला-बद्ध कहानी होती है. . . मुझे ऐसा लगता है. . . शब्द चूंकि आप ही के हैं—एक खास तरह की सामाजिकता के नाम पर अमानवीयता भी रचनाओं में आती जा रही है.

नामवर सिंह : इसको यों भी कह सकते हैं कि इधर कहानी पूरी तरह 'सामाजिक' हो गई है. और इस हद तक सामाजिक हुई है कि अमानवीय हो उठी है. पर कहानी जहां बनती है, वह सामाजिक यथार्थ का चित्रण नहीं, बल्कि उसमें निहित मानवीय संवेदना है. यथार्थवाद के आग्रह के कारण हम लोग कहानी में वातावरण बनाने के लिए बहुत-सी कड़वी, अप्रिय, भयानक स्थितियों का चित्रण करते हैं. और इस तरह परिवेश तो बड़ा यथार्थ हो जाता है लेकिन कहानी इस परिवेश से तो बनती नहीं है. उस परिवेश में भाग लेने वाला मनुष्य कहां टूटता है, कहां खड़ा होता है, मार खाता है. . . कहां लड़ता है, मनुष्य की उस स्थिति में. . . या उसके मानवीय तेवर में कहानी होती है. . . कहानी वहां बनती है. और मुझे लगता है उस मनुष्य की पहचान एक विशेष स्थिति में करने के लिए जिस रचनात्मक दृष्टि की आवश्यकता है. . . कहीं न कहीं चूक वहीं दिखाई पड़ती है. इसीलिए कहानियां सारे यथार्थ चित्रण के बावजूद उस मानवीय स्पर्श के अभाव में मन को छू नहीं पातीं. ऐसी कहानी नहीं बन पाती, जो झकझोर दे, आपके मन को तिलमिला दे.

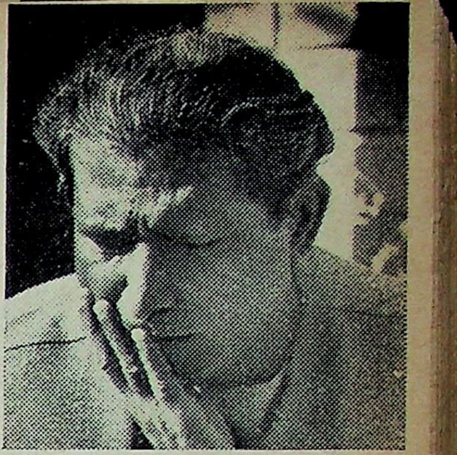

● उदाहरण देकर समझाएं. . .

विजय मोहन सिंह : निर्मल वर्मा पिछले तीस वर्षों से लगातार कहानियां लिख रहे हैं. . . और अभी उनका ताजा कहानी-संग्रह आया है—**'कव्वे और काला पानी'**. मैं समझता हूं (हालांकि मैंने निर्मल वर्मा के बारे में काफी लिखा है. . . और हमेशा अनुकूल ही नहीं लिखा है.) कि जितने कहानीकारों के हमने नाम लिए इनमें निर्मल वर्मा एक ऐसे कहानीकार हैं जो कहानी के 'फार्म' के प्रति कहानी की जो बहुत ही संवेदनशील और अत्यंत निजी भाषा, जो हमको मिलती है सन् पचास के बाद के कहानीकारों में. . . और अब तक, वह निर्मल की कहानियों में है. निर्मल ने अपनी कहानियों में कई तरह के प्रयोग भी किए हैं. यह एक अलग बात है कि सिवा **'परिंदे'** कहानी के. . .निर्मल वर्मा की सबसे ताकतवर, मजबूत और रचना की दृष्टि से महत्वपूर्ण कहानियां वे हैं जो विदेशी परिवेश को लेकर लिखी गई हैं. वह चाहे **'लंदन की एक रात'** हो. . . वह चाहे **'डेढ़ इंच ऊपर हो'** वह चाहे **'जलती झाड़ी'** हो और वह चाहे **'कव्वे और काला पानी'** हो. . .

दूसरी ओर एक और कहानीकार हैं. हम सभी लेखक अच्छी तरह परिचित हैं. वह हैं—**विजयदान देथा**. हम उन्हें हिंदी के क्षेत्र से बाहर नहीं मान रहे हैं,

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विजयदान देथा ने भी लगभग कहानियां ही कहानियां लिखी हैं. . . और काफी लिखी हैं. मेरे सामने तो उनके संग्रह **'उलझन'** और **'दुविधा'** ही आये हैं. . . विजयदान देथा को मैं निश्चित रूप से इस वक्त का कहानीकार मानता हूं. . . कई दृष्टियों से. एक तो यह है कि जिस ढांचे और भारतीयता की बात दूसरे लोग करते हैं वह भारतीय संस्कृति और भारतीयता अपने ठेठ मौलिक और अविकल रूप में जितनी ज्यादा विजयदान देथा में दिखाई पड़ती है उतनी और कहीं नजर नहीं आती. . .

नामवर सिंह : निर्मल के बारे में आपका बदला हुआ रुख देखकर एक तो बड़ा अच्छा लगा मुझे. . . निर्मल वर्मा की कहानियों के प्रति आपका रुख कड़ा रहा है. . . आप ही के मुख से उनकी प्रशंसा सुनकर बड़ा अच्छा लगा. और यदि आप आगे कहते तो कदाचित यही मानते कि कुल मिलकार. . . इन तीस वर्षों के. . . सबसे महत्वपूर्ण और सार्थक कहानीकार शायद आज निर्मल वर्मा हैं. उनके नवीनतम कहानी संग्रह को देखते हुए भी. क्योंकि एक आदमी ने लगातार अच्छी कहानियां लिखी हैं. नये संग्रह में भी उनकी दो-तीन . . . अत्यंत महत्वपूर्ण कहानियां हैं. अब यह बात मैंने कह दी है तो शायद आप आपत्ति करेंगे लेकिन जो बात आप कह रहे थे, उसका निष्कर्ष आपको यहीं ले जा रहा था. पर मैं दूसरी बात कह रहा हूं. . . महत्व की बात वही है. . . आपने कहा कि उन्होंने महत्वपूर्ण कहानियां लिखी हैं विदेशी परिवेश को लेकर. मैं फिर कहूंगा कि परिवेश महत्वपूर्ण नहीं है, महत्वपूर्ण वह मानवीय संवेदना है. **हेमिंग्वे** ने अमेरिका के जीवन के बारे में कहानियां कितनी लिखी हैं. **शेक्सपियर** ने अपने नाटकों में जो परिवेश लिए हैं वे इंग्लैंड के कम और यूरोप के ज्यादा हैं. **ओथेलो** खुद यूरोपियन आदमी नहीं है जिसके आधार पर इतनी बड़ी 'ट्रेजेडी' लिखी गई है. लेकिन मैं उस ब्यौरे में नहीं जाना चाहता. मुख्य वस्तु यह नहीं है. न विजयदान देथा की शक्ति राजस्थानी परिवेश में है और न निर्मल वर्मा की कमजोरी विदेशी परिवेश में. मूल वस्तु है 'ह्यूमेन कंसर्न'. . . (मानवीय संवेदना) . . . फिर यह मानवीय संवेदना . . . चाहे जहां से भी आये. यह विडंबनापूर्ण स्थिति नहीं है कि निर्मल अपने लेखों में भारतीयता का जिक्र करते हैं और कहानियों में विदेशी परिवेश होता है. प्रश्न यह है कि कहानी के केंद्र में मनुष्य कौन है. भारतीय या अभारतीय. परिवेश कहीं का भी हो, वह मन कौन-सा है. वह मन यदि सचमुच आप के भारतीय मनुष्य की चिंताओं से, प्यार से, विसंगति से, विडंबना से. . . बिंधा हुआ है. . . और वह कहानी में व्यक्त होता है तो मेरे निकट वह महत्वपूर्ण है नितांत भारतीय परिवेश को लेकर लिखी और रची कहानी अभारतीय हो सकती है. . . यहां विजयदान देथा का उल्लेख बहुत महत्वपूर्ण है. जोधपुर में मैं रहा हूं, चार साल. हमारा उनका साथ रहा है. **विज्जी, बोर्खेस** और **काफ्का** के ही नहीं और भी तमाम विदेशी लेखकों के घनघोर पाठक हैं. निर्मल से कम नहीं. संवेदना में वे अत्यंत आधुनिक हैं. . . राजस्थानी लोक-कथाओं को 'ट्विस्ट' और 'टर्न' देकर उन्होंने. . . अत्यंत मानवीय संवेदना की कहानी बनायी जो स्वयं उन लोक-कथाओं में नहीं है. विजयदान देथा का गद्य भी पारंपरिक राजस्थानी गद्य नहीं है. उनका गद्य राजस्थानी में भी नितांत आधुनिक गद्य है. आपको उसमें कहीं हेमिंग्वे के गद्य की खूबियां दिखाई देंगी. कहीं काफ्का के गद्य की. कथाओं का परिवेश राजस्थानी है पर संवेदना आधुनिक कथाकार की है. लेकिन इस आधार पर मैं उन्हें निरस्त नहीं कर रहा हूं. यह उनका दोष नहीं है. मान ये रहा हूं कि देथा राजस्थान की पुरानी लोक-कथाओं के लोक-गाथाकार नहीं बल्कि आधुनिक भारतीय मन, संवेदना के रचनाकार हैं. निर्मल पर गलत कारणों से प्रहार किया गया है. . . उनकी जो ठीक कमजोरी बतायी जानी चाहिए वह न बताकर केवल इसलिए उनकी आलोचना हुई है कि वे अभारतीय परिवेश के अभारतीय लेखक हैं.

विजय मोहन सिंह: देखिए नामवरजी, मेरा मतलब दूसरा था. पहली चीज तो, यह कि परिवेश की बात तो मैं नहीं कर रहा था. मैं संस्कृति की बात कर रहा था और उस 'डाइकाटेमी' की ओर संकेत करना चाह रहा था. . . उसके कारण कुछ भी हो सकते हैं, मैं उसके प्रति असहानुभूतिपूर्ण रुख नहीं अख्तियार कर रहा हूं. लेकिन मुझे 'डाइकाटेमी' नजर आती है निर्मल में. . . जब वो चिंतक की हैसियत से बात करते हैं तो उन्हें अपनी संस्कृति इतना सताती है, इतना 'हांट' करती है. . . वे उसके भीतर इतना घुसना चाहते हैं. . . और तमाम चीजें नजर आतीं हैं हमको. और वे अपनी रचना में आते हैं, कहानी में आते हैं तब अपनी संस्कृति संबंधी चिंताएं अचानक गायब हो जाती हैं.

नामवर सिंह : नहीं, ऐसा नहीं है. अपनी संस्कृति को जानने, समझने, और उससे जुड़ने की इतनी तड़प है, बेचैनी है उनमें और उनकी कहानियों में (चाहे वे विदेशी परिवेश ही क्यों न हों) कि जो लोग भारतीय संस्कृति को एक स्वतः प्राप्त वस्तु मानकर के आत्मतुष्ट बने हुए हैं. . .उनकी अपेक्षा निर्मल की तड़प को मैं ज्यादा सर्जनात्मक समझता हूं. .. जिन लोगों ने यह समझ रखा है कि भारत में निरंतर रहने के कारण अपनी संस्कृति हमको अपने बाप-दादाओं से, अपने आप विरासत में प्राप्त हो गई है. . .

● मेरा मतलब दूसरा था. ..

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्हें न उसे प्राप्त करने की चिंता है न उसकी विशेषताएं जानने की जरूरत महसूस होती है. यूरोप की विरोधी पृष्ठभूमि में कभी-कभी निर्मल, इन स्थितियों को ज्यादा समझते हैं. उनकी सीमा यह जरूर हो सकती है कि इस समझ और सोच के पीछे उनकी दृष्टि नितांत अभिजन-वर्गीय होती है. . . यानी इलीटिस्ट.

विजय मोहन सिंह : यह सीमा तो है नहीं. . .

नामवर सिंह : तब आलोचना उस दृष्टि से की जानी चाहिए. विदेशीपन के लिए नहीं.

विजय मोहन सिंह : विदेशीपन की बात नहीं है. . . मैं यह समझने में अपने को असमर्थ पाता हूं, वैसे ये चिंताएं उस परिवेश में जाकर सहसा खत्म हो जाती हैं.

नामवर सिंह : हां, लेकिन 'इलीटिस्ट' अनिवार्यतः अभारतीय नहीं है.

विजय मोहन सिंह : और 'इलीटिस्ट' बहुत बढ़िया शब्द नहीं है.

नामवर सिंह : 'इलीटिस्ट' होने के साथ एक और जो चीज जुड़ी हुई है कि जिंदगी को देखने का उनका रुख सौंदर्यवादी है. जिसे **मुक्तिबोध** 'जड़ीभूत सौंदर्याभिरुचि' कहते हैं. जो एक विशेष प्रकार का वातावरण ही नहीं रचती है, जो विशेष प्रकार की संवेदना भी उत्पन्न करती है. . . यह उनकी सीमा हो सकती है. लेकिन मैं फिर कहूंगा कि वह अभारतीयता की सीमा नहीं है. एक बात और मैं यहां जोड़ दूं, पाकिस्तान के लेखक हैं **इंतजार हुसैन**. . . उन्होंने बौद्ध जातकों का रूप अपनाकर उर्दू में कहानियां लिखी हैं. अब कोई आदमी, यह कहे कि तुम मुसलमान होकर बौद्ध जातकों की शैली में कहानियां लिख रहे हो. . . और तुम गैरपाकिस्तानी या गैर-इस्लामिक काम कर रहे हो. . . तो मैं समझता हूं कि यह घनघोर संकीर्णता का सूचक होगा. स्वयं **तालसतोय** की कई कहानियों पर भारत जैसे पूर्वी देशों की नीति-कथाओं की गहरी छाप है. संवेदना में भी, शैली में भी. पर उन्हें कोई गैर रूसी नहीं कहता.

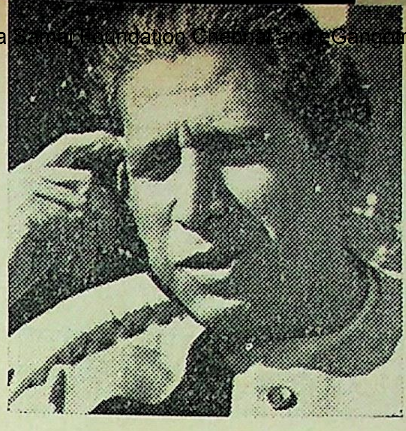

● क्यों . . . क्यों . . . क्यों ?

उन पर फेबुल स्टाइल का गहरा असर था. वैसे इधर **काशीनाथ सिंह** ने भी जातक-शैली में कई अच्छी कहानियां लिखी हैं.

विजय मोहन सिंह : काशी ने जिस तरह से 'फेबुल्स' लिए हैं. . . वह एक तरह से 'बॉटल नेक' से गुजर रही हिंदी कहानी को बाहर निकालने का भी एक जरिया हो सकता है. . . 'फार्म' के स्तर पर भी और 'क्राफ्ट' के स्तर पर भी और सेंसिबिल्टी के स्तर पर भी. और कोई ऐसी चीज, जिसका रचनात्मकता के स्तर पर सार्थक उपयोग हो सके. . . और जैसा काशीनाथ सिंह ने **'आदमीनामा'** की एक-दो कहानियों में किया भी है. दूसरी चीज यह कि इंतजार हुसैन का उदाहरण आपने बहुत गलत दिया है.

नामवर सिंह : क्यों?

विजय मोहन सिंह : इस उदाहरण में कहीं संकीर्णता की ध्वनि न मिले लोगों को.

नामवर सिंह : क्यों?

विजय मोहन सिंह : क्योंकि इंतजार हुसैन को पाकिस्तानी लेखक मानकर गैर भारतीय लेखक मानने की ही बात है. यह अपने आप में गलत है.

नामवर सिंह : मैं पाकिस्तानी प्रतिक्रिया की बात कर रहा हूं, अपनी नहीं, कि साहित्यिक कृतियों के बारे में देश की कैद नहीं लगाई जानी चाहिए.

विजय मोहन सिंह : नहीं-नहीं, हिंदुस्तान-पाकिस्तान के बारे में तो संदर्भ ही अलग हैं. इंतजार हुसैन तो उतने ही भारतीय हैं जितने दूसरे हिंदी के लेखक हो सकते हैं.

नामवर सिंह : यह बात बहसतलब है इसलिए बेहतर है हम हिंदी कहानी के उस 'बाटल नेक' या गतिरोध पर चर्चा करें जिससे निकलने की कोशिशें हो रही हैं. कहानी को इस अंधी गली से निकालने के रास्ते जब ढूंढे गये तो कुछ लोगों ने 'फेबुल' का. . . और अमूर्तन का सहारा लिया. जिसका एक ज्वलंत उदाहरण **बोर्खेस** है. जो गैर यथार्थवादी है. कविता की दुनिया में ऐसा बहुत हुआ. नितांत वर्णनात्मक, विवरणात्मक और कथात्मक कविताओं से मुक्त होने के लिए कविता ने ऐसे रूप लिए जिन्हें 'अमूर्तन' की संज्ञा दी जा सकती है. यद्यपि उस 'अमूर्तन' में कविता ने बिंबों का भी सहारा लिया. हिंदी कहानी के बारे में मुझे कहना है कि उस अर्थ में निर्मल यथार्थवादी कहानीकार नहीं हैं. लेकिन कहानी की जो विधा है उसकी अपनी सीमा है. वह उपन्यास नहीं है कि यथार्थवाद का दामन न छोड़ने के लिए मजबूर हो. सारे यथार्थवादी आडंबर के बावजूद कहानी यदि मन को नहीं छू पाती, तो इस आडंबर से मुक्ति के बारे में आपकी क्या राय है? यदि यह स्थापना करूं कि 'हिंदी कहानी स्थूल यथार्थवाद के आतंक की छाया में विकास नहीं कर पा रही है और इसलिए वह जो मानवीय संवेदना है उसका उन्मोचन कहानी नहीं कर रही है' तो इस पर आपकी क्या प्रतिक्रिया होगी?

विजय मोहन सिंह : पहली बात तो यह कि मेरा मतलब यह नहीं था कि जिसे आप 'स्थूल यथार्थ' कहते हैं वह उसी रूप में रचना में आये. मेरा मतलब यह कतई नहीं है लेकिन सूखे गालों वाले बच्चों से जुड़ी हुई जो वास्तविकता है उसकी नितांत लगातार उपेक्षा करते हुए अगर आप ऐसी रचनाएं कर रहे हैं जो फिर उसी 'इलीटिस्ट टैंडेंसी' का परिणाम हैं, तो निश्चित रूप से वह हमें 'डिस्टर्ब' करेंगी. हम उस पर उंगली उठाएंगे. कहेंगे कि इस रचनाकार

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में कहीं एक बहुत बड़ा (हम यह मानकर चलते हैं कि निर्मल हमारे 'मेजर राइटर' हैं) . . . यानी यह ऐसी चीज है, जो उस आदमी को 'इलीटिस्ट' बनाकर . . . सौंदर्यवादी बनाकर छोड़ देती है.

नामवर सिंह : लेकिन यहां बातचीत का हमारा मुद्दा निर्मल वर्मा नहीं हैं. . .

विजय मोहन सिंह : हां, हम 'नेरेशन' वाली बात कर रहे थे. मार्क्वेस में बहुत ही 'पावरफुल' नेरेशन मिलता है. . . यदि उसका 'नेरेशन' आप बाहर कर दीजिए तो निश्चित रूप से उसकी रचनाएं काफी निचले स्तर की हो जाएंगी.

नामवर सिंह : हां, लेकिन ध्यान रखें कि वर्णन के धरातल पर अत्यंत यथार्थवादी होते हुए वह जिस लोक में ले जाता है वह 'फेंटेसी' का है.

विजय मोहन सिंह : वह एक ऐसा 'टिपिकल कंबीनेशन' पैदा करता है जो बहुत ही पावरफुल है, जो बहुत ही क्रियेटिव है. तो मैं जिस 'बॉटल नेक' की चर्चा कर रहा था तो इन चीजों की ओर मेरा ध्यान जाता है कि ऐसा रचना के स्तर पर संभव है. और मैं उन लोगों में से नहीं हूं जो मानते हैं कि आज की कहानी किसी 'डेड एंड' में पहुंच गई है या उसके लिए आगे कोई राह नहीं है.

नामवर सिंह : बिल्कुल ठीक. पर आप एक बात और कह रहे थे. . . यह सही है कि वह हमारी जिंदगी का एक बहुत बड़ा ऐसा नब्बे फीसदी से ज्यादा जो जीवन है विपन्नता का और उत्पीड़न का शिकार है. उसका प्रतिबिंबन यदि हमारा कथा-साहित्य नहीं करता है. . . तो यह दुर्भाग्यपूर्ण माना जाएगा. लेकिन जरूरी नहीं कि कहानी उसके साथ न्याय करेगी जबकि पूरी कहानी उसी एक गांव के गरीब घर और झोंपड़े या लड़के को लेकर लिखी गई हो. हो सकता है कि पूरी की पूरी कहानी एक दूसरी 'लोकेल' में रखी जाये और वह दृश्य. . . एक पैराग्राफ में आये, या सिर्फ एक वाक्य में आये. . . फिर भी उस जीवन की सच्चाई की ओर ज्यादा गहराई से इशारा करे. बजाय उस कहानी के जो केवल एक गांव के हरिजन परिवार पर लिखी गई हो. जैसे आजकल हरिजनों के शोषण, अत्याचार पर, दहेज. . . पर धुंआधार कहानियां आजकल लोग लिख रहे हैं. हालत यह हो गई है कि जो समस्या अखबारों में ज्वलंत बनकर आती है उसी ओर कहानीकार तुरंत लपकते हैं. . . और होता यह है कि एक रद्दी किसिम का अखबारी लेखन पैदा होता है. जिससे कथा-साहित्य अटा हुआ है. इस तरह न वह कहानी बनती है न उसका यथार्थ मर्मस्पर्शी होता है. कहने के लिए संतोष भले हो जाए कि चलो हमने एक ज्वलंत समस्या पर कहानी लिख दी.

विजय मोहन सिंह : नहीं, देखिए, ये तो. . . ऐसी बात आप कह रहे हैं जिससे मैं शतप्रतिशत सहमत हूं. . . मैं तो एक दूसरी चीज की ओर संकेत कर रहा था—(एक बहुत बड़ी वास्तविकता) एक बहुत बड़े पक्ष. . .की लगातार उपेक्षा रचनाकार को किस संवेदना में डाल देती है.

नामवर सिंह : कहानीकार के लिए वास्तविकता के उस बड़े पक्ष के होने की चिंता का अर्थ है उसकी पक्षधरता, सहानुभूति आदि न कि उसका ब्यौरा जैसे तोल्सतोय की **'जमींदार की सुबह'** जैसी कहानी में अधिकांश ब्यौरा जमींदार का है, लेकिन जो सच्चाई व्यक्त होती है, वह ठीक जमींदारी के खिलाफ एक मामूली किसान की दृष्टि से. कहानी का सच यही है.

विजय मोहन सिंह : मैं नहीं मानता कि 'कहानी' विधा में कोई संभावना नहीं है. लेकिन मैं यह जरूर मानता हूं कि आज की कहानी कहीं न कहीं 'बॉटल नेक' में है.

नामवर सिंह : कहानी नहीं, कहानीकार.

विजय मोहन सिंह : अगर हम 'कहानी' कहते हैं तो कहानीकार तो उसमें है ही. . . खैर, तो कहानीकार इस दौर से गुजर रहे हैं. . . और इसके विकल्प के रूप में जाहिर है कि हम कोई फार्मूला नहीं दे सकते हैं. देना भी नहीं चाहिए. आलोचक को तो बिल्कुल ही अधिकार नहीं है. वैसे थोड़ा संकेत किया था हमने जब मार्क्वेस और बोर्खेस की बात की थी . .

नामवर सिंह : विदेशी लेखकों की सूची से कहीं यह भ्रम न हो कि हम विदेशी मॉडल ही स्वीकार कर रहे हैं, इसलिए यहां प्रेमचंद का नाम लेना जरूरी है. इस चीज की अपार संभावनाएं स्वयं प्रेमचंद के कहानी-साहित्य में हैं. . . इतनी ज्यादा सर्जनात्मक संभावनाएं हैं प्रेमचंद में कि आज भी एक कहानीकार उनसे बहुत से नये रास्ते निकाल सकता है. वह सिर्फ तथाकथित 'यथार्थवाद' नहीं है. जब मैंने विजयदान देथा का नाम लिया था तो इसलिए कि देथा की कहानियों का यह बड़ा गुण है कि वे यह आभास नहीं देतीं कि यह आदमी काफ्का भी पढ़ चुका है, मार्क्वेस भी पढ़ चुका है, बोर्खेस भी पढ़ चुका है. . . पूरा अस्तित्ववाद पढ़ चुका है. . . यानी जहां तक पढ़ने-लिखने का प्रश्न है विज्जी निर्मल वर्मा से किसी मामले में कम नहीं हैं. . . लेकिन उनकी कहानियां देखिए तो. . .

विजय मोहन सिंह : इससे मेरी बात की पुष्टि होती है. इसके बावजूद उनकी कहानियां रचना के स्तर पर. . . पहली बात तो यह कि उसमें कहीं इस तरह की कोई जुमलेबाजी नहीं मिलेगी. . .

नामवर सिंह : अच्छा तो यह था कि हम कुछ ठोस कहानियों पर बात करते. हो यह रहा है कि ज्यादातर बहस सामाजिक यथार्थ और जीवन पर होती है, कहानी की रचना-प्रक्रिया पर कम.

विजय मोहन सिंह : शायद इसी की आड़ लेकर गलत आलोचक उन रचनाओं को 'प्रोमोट' कर रहे हैं जो अच्छी कहानियां नहीं हैं.

नामवर सिंह : शायद. . . □

● **संयोजन एवं प्रस्तुति : महेश दर्पण**

● **छाया : धर्मवीर जयनर**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

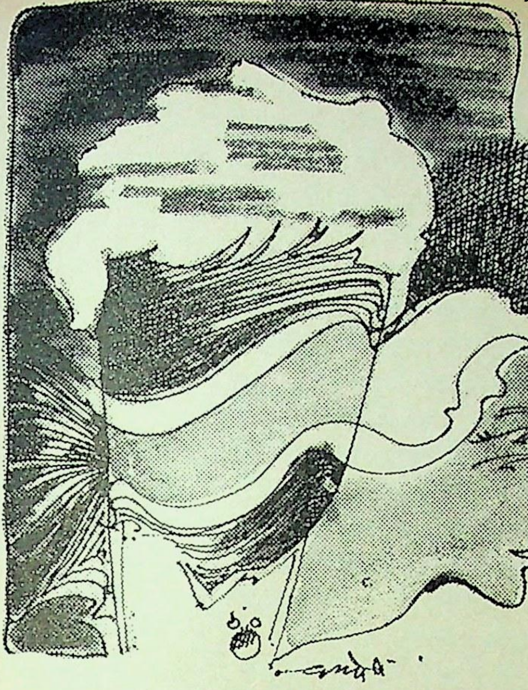

दाद की बेदाद

• मुज्तबा हुसैन

किसी शायर को मुशायरे में दाद न मिले तो वह समझता है अब मैं और शायरी दोनों गये काम से, और गर ज्यादा ही मिले तो भी ऐसा ही कुछ. . . आखिर वाजिब दाद की कसौटी क्या है और दाद का जन्म हुआ कब?

यह पता चलाना बहुत मुश्किल है कि शायरी पहले पैदा हुई या दाद, सवाल है कि अंडा पहले पैदा हुआ कि मुर्गी. ऐसा सवाल जब भी हमारे सामने आता है तो हम सावधानी के तौर पर पहले अंडा खा लेते हैं और मुर्गी को सवाल पूछने के हवाले करके कहते हैं कि यह सवाल और करना जारी रखे और जब भविष्य में मुर्गी फिर अंडा दे तो वह दोबारा इस सवाल को पूछने के लिए हमारे पास आ जाए.

मगर जहां तक शायरी और दाद में 'पहले कौन' का सवाल है, हम इस मामले में बिल्कुल बेबस हैं क्योंकि दोनों में से कोई भी चीज खायी नहीं जा सकती. यह गलतफहमी उर्दू अदब में आम तौर पर फैली हुई है कि शायरी पहले पैदा हुई और दाद बाद में. मगर हम इस नजरिये को मानने के लिए तैयार नहीं हैं, क्योंकि हमने तो यह देखा है कि अभी शायर अच्छी तरह अपना शेर भी सुनाने नहीं पाता कि लोग दाद का तूफान उठा देते हैं और शेर की हालत वही हो जाती है जो नक्कारखाने में तूती की आवाज की होती है. शेर तो कहीं पीछे रह जाता है और दाद आगे निकल जाती है. गोया दाढ़ी से मूछें बढ़ जाती हैं.

मुशायरों में आये दिन दी जाने वाली दाद को सुनकर हम इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि दाद निश्चय ही पहले पैदा हुई होगी. बल्कि हम तो यहां तक कायल हैं कि दाद और शायरी का आपस में कोई रिश्ता नहीं होता. ये दोनों ही अलग-अलग फन हैं. यह और बात है कि इन दोनों फनों का सक्रिय करके प्रदर्शन संयोगवश एक ही प्लेटफार्म पर किया जाता है. लोग बरसों रियाज करके दाद देने का फन सीखते हैं और इस फन में वह महारत हासिल करते हैं कि शायर का शेर कम से कम और दाद ज्यादा सुनाई देती है.

मुशायरों में वह दृश्य देखने से ताल्लुक रखता है जब अकेला शायर चुपके से एक शेर सुना देता है और सारा मजमा उस पर टूट पड़ता है. जो लोग मुशायरों की इस परंपरा से परिचित नहीं होते अगर वे किसी शायर को इस तरह भरे मजमे से दाद वसूल करते देख लें तो उन्हें बेचारे शायर पर रहम आ जाए. हमारे एक यूरोपियन दोस्त ने कभी मुशायरा नहीं देखा था. (मुशायरा देखने की बात हम इसलिए कर रहे हैं कि ज्यों-ज्यों जमाना तरक्की करता जा रहा है, मुशायरा सुनने से कहीं ज्यादा देखने की चीज बनता जा रहा है) खैर तो साहब, हमारे उन यूरोपियन दोस्त ने हमसे यह इच्छा प्रकट की कि हम उन्हें कोई मुशायरा दिखाएं. हम उन्हें लेकर फौरन एक मुशायरे में पहुंचे.

वहां एक शायर ने जैसे ही एक मिसरा सुनाया, सारे श्रोता हाथ उठा-उठाकर उस पर यों टूट पड़े जैसे मक्खियां हलवाई की दूकान पर टूट पड़ती हैं. हमारे यूरोपियन दोस्त बड़े इंसान-दोस्त और रहमदिल तबीयत वाले व्यक्ति थे. एक क्षण के लिए, उन्होंने यह दृश्य देखा तो इंसानियत का समंदर उनके भीतर ठाठें मारने लगा और वह देखते ही देखते मंच पर पहुंच गये. फिर शायर को गोद में उठाया और श्रोताओं से गरजकर कहा, "आप लोगों को शर्म आनी चाहिए कि अकेले आदमी के साथ इस तरह गैर-इंसानी बर्ताव करते हैं. हिम्मत हो तो एक-एक आये और शायर का मुकाबला करे. यह बेचारा तो लगातार सलामों पर सलाम किये जा रहा है और आप इसके खिलाफ शोर बुलंद कर रहे हैं. भला यह भी इंसानियत है!"

हमने फौरन दौड़कर योरुपियन दोस्त को गोद में उठाया और मुशायरे से बाहर चले आये. हमने उन्हें बहुतेरा समझाने की कोशिश की कि मुशायरे में यह सब कुछ होता है, मगर वह दाद के इस अंदाज को इंसानियत-विरोधी साबित करने पर तुले बैठे थे. उनका खयाल था कि ऐसी भयंकर क्रूरता की मिसाल केवल पुराने रोमनों के यहां मिलती है कि वे कैदी

CC-0. In Public Domain.

● व्यंग्यचित्र : प्रतिभा

को भूखे शेरों के सामने छोड़कर आनंद लिया करते थे. यह सच भी है कि दाद देने का यह अनोखा रिवाज दुनिया की कम जबानों में ही पाया जाता है. अंग्रेजी जबान को ही लीजिए, कि जब उसका कोई शायर नज्म सुनाता है तो किसी भी कोने से 'मरहबा', 'सुबहान अल्लाह,' 'माशा अल्लाह,' 'जजाक अल्लाह' की गूंज सुनाई नहीं देती. अंग्रेजी हालांकि बड़ी तरक्की-याफ्ता जबान है मगर उसमें आज तक 'सुबहान अल्लाह' और 'माशा अल्लाह' का मुनासिब तर्जुमा नहीं हो सका है.

दाद जब हद से गुजर जाती है तो 'मुकर्रर इरशाद' में तब्दील हो जाती है यानी जब श्रोताओं को गलती से किसी शायर का कोई शेर हद से ज्यादा पसंद आता है तो वह शायर से उस शेर को बार-बार पढ़वाते हैं. शायर का काम यह होता है कि वह उस शेर को बस लगातार पढ़ता चला जाए. एक महफिल में एक श्रोता को एक शायर का एक शेर पसंद आया कि उसने 'मुकर्रर इरशाद' का तांता बांध दिया. अब शायर साहब हैं कि वह इकलौता शेर पढ़ते चले जा रहे हैं. यों महसूस होने लगा किसी पुराने ग्रामोफोन रेकार्ड में सूराख पड़ गया हो और सुई एक मुकाम पर अटककर रह गयी हो. जब उस श्रोता ने पच्चीसवीं मर्तबा 'मुकर्रर इरशाद' का नारा बुलंद किया तो हमने उन श्रोता महोदय से बड़े सम्मान के साथ पूछा, "किब्ला, क्या आपको वाकई यह शेर इतना पसंद आया है कि आप इसे पच्चीस मर्तबा सुनें?"

इस पर श्रोता ने गजबनाक निगाहों के साथ हमारी तरफ देखते हुए कहा, "माफ कीजिए, शेर को पसंद करने का सवाल तो बाद में पैदा होगा. इस वक्त तो मैं सिर्फ इसे समझने की कोशिश कर रहा हूं. कमबख्त ने ऐसा कठिन शेर कहा है कि पच्चीस बार अपनी सुनने की समझ को कड़ी आजमाइश से गुजारने के बावजूद उसका मतलब समझ में नहीं आ रहा है."

मुशायरों की दाद एक छूत का मर्ज भी है. अगर एक श्रोता भी, खुदा न करे, इस मर्ज में मुब्तला हो जाए तो फिर सारे श्रोता एक के बाद एक इस मर्ज में मुब्तला होने लगते हैं. इसे अदबी जबान में मुशायरे की उठान कहते हैं. मुशायरे को इस तरह उठाया नहीं जा सकता जिस तरह आप दूसरे साजो-सामान को उठा सकते हैं. अगर ऐसा होता तो चंद कुलियों की मदद से भी मुशायरे को उठाया जा सकता था. मुशायरा उसी वक्त उठता है जब श्रोताओं में ऐसे जाहिल भी शामिल रहें जो बिना सोचे-समझे 'वाह-वाह' का शोर बुलंद कर सकें. याद रखिए मुशायरे की कामयाबी में जाहिलों का बड़ा हाथ होता है. मुशायरा एक बार 'उठ' जाए तो फिर उसे बिठाने में बड़ी दिक्कत पेश आती है, क्योंकि श्रोता दाद के मामले में 'एलर्जिक' हो जाते हैं. उन्हें दाद देने की आदत-सी हो जाती है. अच्छे और बुरे का अंतर मिट जाता है और दाद के 'समाजवाद' का दौर शुरू हो जाता है.

यह तो आप जानते ही हैं कि दाद दी जाती है तो उसकी रसीद भी वसूल की जाती है. रसीद वसूल करने का तरीका यह है कि शायर दाद के जवाब में सलाम करता जाए. शायर लेन-देन के इतने पक्के और खरे होते हैं कि अभी पूरी तरह दाद दी भी नहीं जाती कि उसकी रसीद 'सलाम' की सूरत में दी जाती है. हमने बाज दयानतदार शायर ऐसे भी देखे हैं जो 'अर्ज किया है' के साथ ही सलाम दाग देते हैं और गजल के मतले से मक्ते तक सलामों की कई सेंचुरियां बनाकर डायस से नीचे उतरते हैं तो हालत यह होती है कि कलाम तो खत्म हो जाता है मगर सीधा हाथ लगातार ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर सलाम के लिए उठता रहता है. रवानी इसी को कहते हैं. आप यकीन करें कि हमारे एक शायर दोस्त नींद की हालत में भी सलाम करते रहते हैं. एक दिन हमने वजह पूछी तो कहने लगे, "भई, मैं ख्वाब में देखता हूं कि लोग मेरे कलाम पर दाद दे रहे हैं. जाहिर है कि इस दाद के जवाब में मैं सलाम भी कर लेता हूंगा. इसमें हैरान होने की की क्या बात है." वैसे जनाब का कलाम भी कुछ ऐसा होता है कि उस पर सिर्फ ख्वाब में ही श्रोता दाद दे सकते हैं. जाहिर है कि इसमें हैरान होने की कोई बात नहीं है.

सलाम करने के भी कई तरीके होते हैं. बाज शायर दोनों हाथों से दाद वसूल करते हैं यानी सलाम करने का अंदाज कुछ इस तरह होता है कि अपने दोनों हाथ उठाकर पेशानी पर मारने लगते हैं. समझ में नहीं आता कि ये सलाम कर रहे हैं या अपनी किस्मत को कोस रहे हैं. बाज शायर बहुत ही मुख्तसिर-सा सलाम करते हैं. एक शायर साहब हैं जो सलाम क्या करते हैं, अच्छा-खासा सीना कूटते हैं. कुछ शायर दाद को कुछ इस अंदाज से वसूल करते हैं जैसे उन्हें बिच्छू ने काट लिया हो यानी यह डायस पर बाकायदा

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उछल-कूद करते हैं.

दाद का यह एक रुख हुआ लेकिन दाद का दूसरा रुख बड़ा संगीन होता है यानी उसमें यह पता चलाना मुश्किल होता है कि श्रोता दाद दे रहे हैं या 'हूटिंग' कर रहे हैं. 'दाद' और हूटिंग जब हम-काफिया और हम-रदीफ बन जाते हैं तो मुशायरे का लुत्फ दोबाला हो जाता है. ऐसे मौकों पर श्रोताओं की एकता ईर्ष्या योग्य बन जाती है. किसी शायर पर हूटिंग करते वक्त कौम में जो एकता की भावना जाग जाती है वह किसी और मौके पर दिखाई नहीं देती. शायर कहेगा, "देखिए, मैंने कैसी कठिन जमीन में शेर कहा है." और इस कठिन जमीन के पहले शेर के साथ ही डायस पर उसी कठिन जमीन के पत्थर बरसने लगते हैं. आपको शायद यकीन न आए कि आजकल के मुशायरों में दाद देने का यही तरीका आम है और दिन-प्रति-दिन इसकी लोकप्रियता बढ़ती जा रही है.

बाज वक्तों पर श्रोता शराफत दिखाने पर तुल जाते हैं. शराफत से मुराद यह है कि श्रोता यह तय करके आते हैं कि शायर चाहे कितना ही अच्छा शेर क्यों न सुनाए वे उस पर दाद नहीं देंगे. सारे मुशायरे को जैसे सांप सूंघ जाता है. शायर दाद हासिल करने के लिए एड़ी-चोटी का जोर लगाता है मगर श्रोता टस से मस नहीं होते. अच्छे से अच्छा शेर शायर के मुंह से निकलता है और आसमान की तरफ चला जाता है. श्रोता यों दम साधे बैठे रहते हैं जैसे वे श्रोता नहीं बल्कि मुशायरे में मूर्तियां रख दी गयी हों. आप ही सोचिए, शायर के नाजुक और हस्सास दिल पर क्या न गुजरती होगी. शायर थक-हारकर माइक्रोफोन से जुदा होता है और अपने शायर दोस्तों में पहुंचकर 'अदब में ठहराव' के मसले पर बहस करने लगता है, याद रखिए कि शायर को जब दाद नहीं मिलती तो इसका मतलब यह होता है कि 'अदब में ठहराव' आ गया है. ऐसे ही किसी मुशायरे के बारे में सुन रखा है कि एक शायर ने कलाम सुनाना शुरू किया तो देखा कि श्रोताओं पर नीमबेहोशी छायी है, न कहीं से दाद का शोर बुलंद होता है न फरियाद का. शायर ने दो शेर बड़ी हिम्मत करके सुनाये तब भी श्रोताओं पर कुछ असर न हुआ तो शायर ने माइक्रोफोन छोड़ते हुए कहा, "हजरात! अब आगे शेर क्या सुनाऊं क्योंकि इस गजल के बकिया शेर भी ऐसे ही हैं . . . "

एक नौजवान शायर के दिल में यह हसरत अर्से से परवान चढ़ रही थी कि कोई उसके कलाम पर दाद दे. उसके कलाम पर जीते-जी दाद मिलने के दूर-दूर तक कोई आसार नहीं थे. ऐसे में उसके दोस्तों ने उसके खिलाफ गहरी साजिश की और कहा कि वे उसे एक बड़े आलोचक के पास ले जाएंगे. अगर उस आलोचक ने तुम्हारे कलाम पर दाद दी और तुम्हारे बारे में चंद जुमले भी लिख दिये तो साहित्य में तुम्हारा स्थान हमेशा के लिए निश्चित हो जाएगा. साहित्य में स्थान किसे नहीं चाहिए. शायर फौरन राजी हो गया. चलते-चलते उसके दोस्तों ने उसे खबरदार किया कि उस आलोचक का दाद देने का तरीका यह है कि अगर उसे कोई शेर पसंद आता है तो वह शायर के गाल पर तमाचा रसीद करता है. गोया तमाचा शेर की पसंदीदगी की सनद है, तुम इसकी परवाह न करना. दोस्तों ने दूसरी तरफ जाकर एक फर्जी आलोचक को भी तैयार कर लिया और उसे दाद देने का तरीका भी समझा दिया. बेचारा मासूम शायर पूरे सम्मान के साथ उस आलोचक के पास पहुंचा. आलोचक बड़ी मुश्किल से उस नौजवान शायर का कलाम सुनने पर आमादा हुआ. शायर ने बड़ी तमन्नाओं के साथ पहला शेर सुनाया और अभी दाद-तलब नजरों से आलोचक की तरफ देखने भी न पाया था कि एक झन्नाटे का तमाचा शायर के गाल पर पड़ा और आलोचक बोल उठा, "बदमाश! कमीने! इतना अच्छा शेर कहता है! अब तक कहां छिपा बैठा था!" शायर दाद की शिद्दत और तमाचे की पीड़ा के मिले-जुले जज्बात से गुजर ही रहा था कि आलोचक ने दूसरा शेर पढ़ने को कहा. दूसरे शेर की दाद शायर को दूसरे गाल पर मिली और इतने जोर से मिली कि दूर खड़े हुए लोगों ने इस दाद की 'तड़ाख्' को सुन लिया. जब आलोचक ने शायर से तीसरा शेर पढ़ने को कहा तो शायर दूर जा खड़ा हुआ. उसने तीसरा शेर सुनाया और इस डर से भाग खड़ा हुआ कि कहीं आलोचक को तीसरा शेर भी पसंद न आ जाए. शायर का अंदाजा दुरुस्त साबित हुआ, आलोचक को तीसरा शेर भी पसंद आ गया था और वह दाद के लिए शायर के पीछे भागने लगा. शायर किसी तरह हाथ नहीं आता था. लिहाजा आलोचक ने अपनी छड़ी से दाद देना ही मुनासिब समझा. इत्तफाक से हम भी वहां मौजूद थे. आखिरी जुमला जो हमने भागते हुए शायर की जबान से सुना, वह यह था कि— "किब्ला, यह तो सरासर बेईमानी है. आपसे हाथ से दाद तो वसूल करने की बात तय हुई थी, आप छड़ी की दाद मुझसे वसूल नहीं कर पाएंगे, चाहे आप कितने ही बड़े आलोचक क्यों न हों." इसके बाद शायर ये जा वो जा. बेचारा नजरों और अदब दोनों से हमेशा-हमेशा के लिए गायब हो गया. □

● **अनुवाद : लक्ष्मीचंद्र गुप्त**

नयी प्रतिभा की तलाश

पिछले वर्ष प्रारंभ किये गये इस रचनात्मक अभियान का व्यावहारिक रूप यानी—

नवांकुर विशेषांक

देश भर के विश्वविद्यालयों के छात्र-छात्राओं की पुरजोर कहानियां और नयी पीढ़ी की पहचान के लिए पढ़िए

सारिका

16 जून, 1984

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

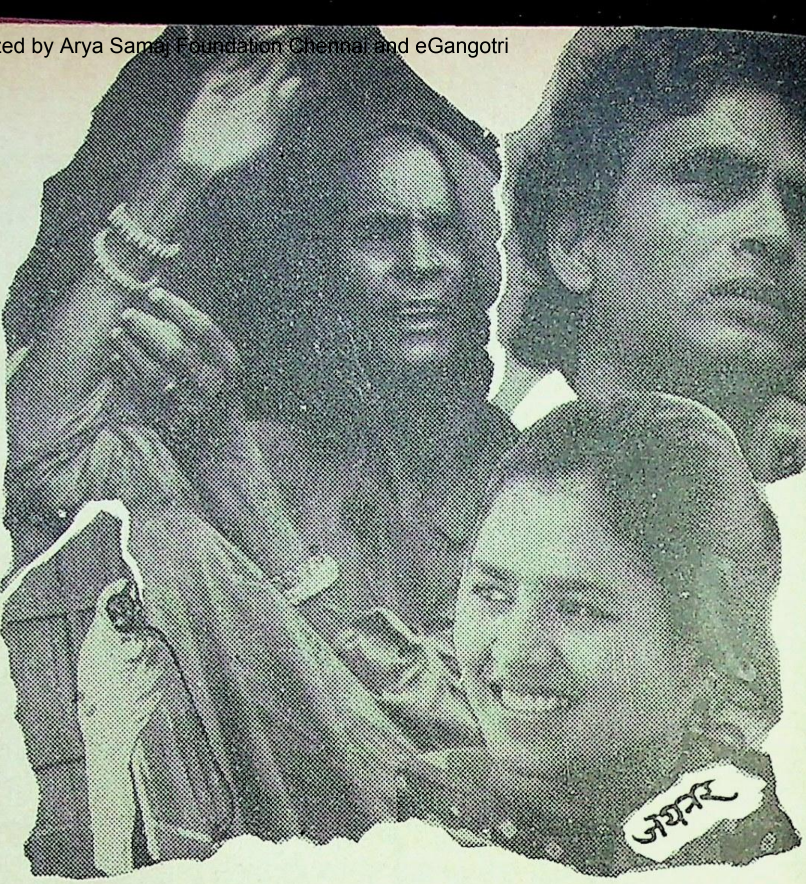

आते हुए लोग

और कल?

हिमानी भट्ट

कार का हॉर्न सुन चौकीदार ने फाटक खोला. मुझे देखते ही वह आश्चर्य-चकित हो गया. मैं सर्दियों में मसूरी में! वह भी अनिल के बिना! खैर, उसने मुझे सलाम किया. मैं कार से उतरी, उसे सामान अंदर रखने को कह-कर सामनेवाले बंगले का फाटक खोल गुलाबी की मां की कोठरी की ओर बढ़ गयी. श्यामसिंह ने मुझे देखा और एकाएक उसकी आंखों में आंसू भर आये.

"मेमसाब, आप आ गयी तेरहवीं में! गुलाबी की मां की आत्मा को शांति मिलेगी."

श्यामसिंह की आंखों के आंसू देखकर सोचने लगी कि आखिर थी क्या गुलाबी की मां? गुलाबी की मां थी. हां, उसका नाम क्या था, मुझे आज तक नहीं पता. यहां इकट्ठे चौकीदार, मालियों वगैरह में शायद ही कोई होगा जो उसका नाम जानता होगा. यहां तक कि खुद श्यामसिंह भी नहीं जानता होगा.

जब वह मुझे पहली बार दिखी थी तो मेरी आया ने मुझे बताया कि वह गुलाबी की मां है. "श्यामसिंह है न सामने वाली कोठी का चौकीदार, उसकी बीवी." "अच्छा," मैंने कहा था और चाय पीने लगी थी अनमने ढंग से.

अगले दिन जब मैं सुबह टहलने निकली और उसके अगले दिन और फिर हर दिन वह मुझे दिखाई देती—कभी दूध निकालते हुए, तो कभी बकरियों को कटघरे से निकालते हुए, कभी अपनी कोठरी झाड़ते हुए. मुझे देखते ही वह अपना सब काम बंद कर देती और कहती, "नमस्ते मेमसाब." मैं मुस्कराकर सिर हिला देती. उसका पति हमारे बंगले की चौकीदारी नहीं करता था, न वह हमारा कुछ करती, किंतु उसका हर काम छोड़कर नमस्ते करना, मुझे कभी अजीब नहीं लगा.

शाम को जब अनिल के बहुत आग्रह करने पर माल रोड घूमने निकलतीं, तब वह अपनी बकरियां चराकर लौट रही होती, क्योंकि अक्सर अनिल को अपनी कार रोकनी पड़ती, जब तक कि वह अपनी बकरियों को एक तरफ न कर लेती. उसकी नमस्ते मेमसाब के जवाब में मैं फिर मुस्करा देती, क्योंकि अनिल हर वक्त पहाड़ी रास्तों को कोसता रहता, पर मुझे पहाड़ी रास्ते क्या—पहाड़ी बाजार, पहाड़ों की हर चीज बेहद पसंद है.

दिल्ली की व्यस्तता और आपाधापी के कारण तीन साल पहले हुए नर्वस ब्रेकडाउन के बाद अनिल मुझे मसूरी ले आया था. मैंने अनिल से कहकर यह बंगला खरीदवा लिया. मेरे ब्रेकडाउन की वजह से मुझे ज्यादा मना भी नहीं कर पाया.

नर्वस ब्रेकडाउन के बाद मैं मसूरी में शहर से दूर सैर करने अकेले निकल पड़ती. मुझे लगता कि मेरे पैरों की थकान ही मेरी मानसिक थकान दूर कर सकती है. चलते-चलते बहुत थक जाती तो बांज के पेड़ के नीचे बैठ जाती और सामने के पहाड़ देखती.

ऐसे ही बैठी थी एक दिन. गुलाबी की मां अपनी बकरियों के झुंड के साथ गुजरी. मुझे देखकर वह रुकी, कुछ कहने को हुई कि मैंने मुस्कराकर आंखें मूंद लीं. वह आगे निकल गयी. मैंने आंखें खोलकर देखा, तब वह नीचे और नीचे पगडंडियां उतरती जा रही थी.

मैं जब घूमकर लौटती तो अनिल परेशानी से चहलकदमी करता हुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह श्याम सिंह की बहू थी, वह गुलाबो की मां थी, पर उसका अपना नाम क्या था, शायद कोई नहीं जानता था, खुद उसे भी याद नहीं था... प्रस्तुत है ऐसी एक बेनाम जिंदगी से साक्षात्कार 'आते हुए लोग' शृंखला की उनतीसवीं कड़ी के रूप में

मिलता. "अगर तुम अभी तक नहीं आती तो मैं तुम्हारे पीछे आ रहा था तुम्हें ढूंढने—' इससे पहले कि वह कुछ कहे 'मैं कह देती'. अनिल के दिल्ली चले जाने पर मुझे लगा कि मैं स्वतंत्र हो गयी हूं. इस खूबसूरत-सी जगह में अनिल के होने पर मुझे लगता था कि मैं एक सी. बी. आई. ऑफिसर के साथ रह रही हूं. मैं ज्यादा दूर से चलकर आती तो सुनने को मिलता—"तुम, अभी बीमारी से उठी हो, इतना ऐक्जरशन ठीक नहीं." कुछ काम करती तो वह रोक देते. कोई आदमी भला-चंगा हो, वह भी बीमार महसूस करने लगे. ऐसी देखरेख से अनिल के जाने पर मैंने महसूस किया, अब मैं अकेले इन पगडंडियों पर निकल सकती हूं. जितनी दूर मेरा मन चाहे, घूम सकती हूं. जहां चाहे रुक सकती हूं, जब चाहे घर से निकल सकती हूं. किसी तरह की कोई पाबंदी नहीं. मैं हूं और यह पहाड़ है. लेकिन मुझे नहीं पता था कि पगडंडियों पर मेरा ही एकाधिकार नहीं है, उन पर गांव से दूध बेचने वाले शहर की तरफ आते हैं, गुलाबी की मां बकरियां चराने निकलती हैं..

अनिल के जाने के बाद जब वह मुझे दिखाई दी तो वह खुद ही पूछ बैठी, "मेमसाब, साब तो गये, आप नहीं गयीं?"

"अ नहीं. . . अ हम भी जाने वाले हैं." कहकर मैं आगे निकल गयी. फिर मुझसे मिली तो वह पेड़ के नीचे बैठी पोटली खोलकर कुछ खा रही थी. मुझे देखकर बोली, "मेमसाब, खाना खाइए." और मेरी तरफ कोदू की मोटी रोटी बढ़ा दी. मैंने भूख न होने का बहाना कर दिया.

"मेमसाब, आप अकेले ही घूमती रहती हैं."

"हां," इससे पहले कि वह और ज्यादा पूछती, मैं पूछ बैठी, "गुलाबी कैसी है."

"आपकी मेहरबानी से ठीक है." मेरी मेहरबानी से! मैंने मन-ही-मन सोचा.

ऐसे ही मुलाकातों में मुझे एक दिन पता चला कि गुलाबी को बुखार है. तो मैंने फिर शायद घड़ी देखी यह जताते हुए कि काफी देर हो गयी है और मुझे घर लौट जाना चाहिए या ऐसा ही कुछ बहाना बनाया था. मुझे उन दिनों ओबसेशन था अकेले रहने का. मैं किसी से मिलना नहीं चाहती थी, बोलना नहीं चाहती थी. उसे कहा कि घर से ऐनलजिन आकर ले ले और आगे निकल पड़ी.

अगली गर्मियों में मैं मसूरी लौटी तो मुझे पता नहीं क्या सूझी कि मैंने उसे अपनी एक पुरानी साड़ी दे दी. उसकी आंखों में आंसू देखकर मुझे बड़ी शर्मिंदगी महसूस हुई कि मैंने उसे नयी साड़ी क्यों नहीं दी. फिर वह मेरे लिए घर की छाछ लेकर आयी. जब वह पालक या और कोई सब्जी तोड़ती अपने बगीचे से तो थोड़ी मेरे लिए भेज देती. पहली बार मैंने मना किया तो वह बोली, "मेमसाब, आपको ताकत मिलेगी."

मैंने अनिल की तरफ देखा तो वह जोर से हंस पड़ा. मैं उसी दिन बाजार गयी और गुलाबी के लिए चॉकलेट और गुलाबी की मां के लिए तिब्बती शाल ले आयी. फिर क्या था, तब से जब वह मुझसे मिलती, मेरी मजाल जो मैं सिर्फ मुस्कराकर निकल जाऊं. मुझे बाकायदा रुकना पड़ता. उसकी बकरियों, उसकी गायों, उसके बच्चों और पति के बारे में सुनना पड़ता.

"गुलाबी बड़ी अच्छी है मेमसाब, बर्तन मांजकर पढ़ने जाती है. शाम को आग जलाने के लिए लकड़ियां चुनकर लाती है, पर बड़ा लड़का, स्कूल से टिप कर सिनेमा देखने निकल जाता है. अब देखिए न मेमसाब, पढ़ेगा नहीं तो बनेगा नहीं. आजकल बिना पढ़ाई के गुजारा कहां!"

एक दिन मैंने उससे पूछा, "गुलाबी की मां, तुम्हारा नाम क्या है?"

वह हंस पड़ी, बोली, "याद नहीं मेमसाब. छोटी-सी थी, इनके घर आ गयी थी. यहां सब श्यामसिंह की ब्वारी कहते थे. जब गुलाबी हुई तो गुलाबी की मां कहने लगे."

"लेकिन, श्यामसिंह भी तो कुछ कहकर बुलाता होगा?"

"न मेमसाब, आज इत्ते साल हो गये, न मैंने इनका नाम लिया, न इन्होंने मुझे नाम से पुकारा." और मैं उसे देखती ही रह गयी. मुझे लगा कि क्या इसका अपने पति या बच्चों के अलावा कोई अस्तित्व ही नहीं है? बचपन में किसी की बेटी रही होगी, फिर किसी की पत्नी, फिर किसी की मां और कल? कल श्यामसिंह गांव से दूसरी औरत ले आयेगा काम करने के लिए. बच्चों की देखभाल करने के लिए... □

▣ हिमानी भट्ट

जन्म देहरादून में, वहीं रसायन शास्त्र में एम. एस-सी. करने के बाद दिल्ली के राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय से डिप्लोमा. संप्रति राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय रंगमंडल की सदस्य हैं.

● **नेशनल स्कूल आफ ड्रामा, रंगमंडल, रवींद्र भवन, नयी दिल्ली-110001**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देश की सांस्कृतिक विरासत की सुरक्षा

सत्ता और संस्कृति के आपसी मेल-जोल की कहानी पुरानी है. एक दूसरे की हिफाजत, एक दूसरे के हितों की पूर्ति अनकही कहानी की तरह मान्य है. इसी बिनाह पर 1953 में भारत के पहले प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ने अकादमी की बुनियाद डाली थी. आज उसकी स्थिति उस मुकाम पर है जहां एक अदद नकारात्मक खोंचे के अलावा कुछ और शेष नहीं है.

भरतमुनि के वंशधर

सूत्रधार

भारत सरकार कहती है...

"देश की सांस्कृतिक विरासत को सुरक्षित रखना, जनता में कला के प्रति जागरूकता पैदा करना, और प्रदर्शनात्मक तथा सर्जनात्मक कलाओं में उच्च स्तरों को प्रोत्साहित करना राज्य नीति के उद्देश्यों में है. इसके लिए केंद्रीय और राज्य सरकारें कला, नृत्य, नाटक, संगीत एवं साहित्य की राष्ट्रीय और क्षेत्रीय अकादमियों के जरिए कला और संस्कृति के विकास (?) का प्रयत्न करती हैं. इसके अतिरिक्त ललित-कलाओं के क्षेत्र के मूर्धन्य व्यक्तियों को उनकी सेवाओं के लिए समय-समय पर राष्ट्रपति राज्य-सभा-सदस्य मनोनीत करता है."

सूत्रधार को सरकार की इस उदारवादी दृष्टि का कोण समझ में नहीं आया कि यह सरकार किस संस्कृति और कला की हिफाजत करना चाहती है. क्योंकि कहीं किसी अच्छी किताब में यह लिखा हुआ है कि सत्ता की एक संस्कृति होती है और संस्कृति की एक सत्ता बनती है. और इतिहास में यही संस्कृति जिंदा रहती है. सूत्रधार इसी फार्मूले पर भारत की सत्ता का इतिहास, संस्कृति और कला का विकास ढूंढता है. रवींद्र भवन के जिस कमरे में 'संगीत नाटक अकादमी' चलती है वहां मात्र दो अकादमी थोड़ा बहुत काम करती दिखाई पड़ती हैं. 'साहित्य अकादमी' और 'ललित कला अकादमी.' 'संगीत नाटक अकादमी' कब, कहां, क्या और क्यों कर रही है, बहुत माथा-पच्ची करने के बाद भी समझ में नहीं आया. और जो समझ में आया वह इतना पेचीदा था कि सूत्रधार खुद छपताल करते हुए बाहर आ गया.

'संगीत नाटक अकादमी' का लब्बो-लुबाब यह है कि कुछ कमरे हैं, जिनमें, कुछ साहब बैठे हैं, कुछ कुर्सियों हैं. कुछ फर्नीचर है, बाकी फाइलें हैं. हर एक टेबल पर गिलास है, मेज के नीचे जूता है और सर के ऊपर पंखा. भागने के लिए बाजू पर खिड़की है, वहां से बस एक ही आवाज आती रहती है.—भारत, संस्कृति, कला, (छोड़कर) वगैरह-वगैरह बचाये रखना है. यही हमारा काम है. और इसे ही बचाने के लिए हम वातानुकूलित कमरे में बैठे, बचाने का उपक्रम करते जा रहे हैं. और सरकार है कि एक मुश्त हैवी रकम पकड़ाये जा रही है. बात यहीं तक महदूद रहती

● केशव कोठारी : स.ना.अ. की सरपरस्ती

फिर भी कुछ समझ में आता. मामला इससे भी आगे है. क्योंकि इस सूत्रधार ने बहुत से ऐसे रंगकर्मियों को सड़क पर घूमते हुए देखा है जो आर्थिक अभाव में नाटक नहीं कर पा रहे हैं. संगीत नाटक अकादमी ऐसे लोगों की मदद नहीं करती क्योंकि "दीज आर एम्येचोर... आई मीन... हाउ कैन आई बिलीव... दे बिल बी इन थिएटर... आई डोंट थिंक..." रंगकर्मी दिल्ली में परेशान सड़कों पर घूम रहा है और उसके इलाज के लिए बनी यह संस्था तब तक उसे मान्यता नहीं देना चाहती जब तक कि वह स्थापित ग्रुप न हो जाये. नतीजा यह होता है कि तीन साल बाद मिलने वाले अकादमी अनुदान के इंतजार में वह ग्रुप ही टूट कर बिखर जाता है. अकादमी कहती है—पहले जरा दर्जन भर नाटक करके दिखाओ फिर हम कहेंगे अब कुछ हो रहा है. कहां से करेगा वह नाटक!

'संगीत नाटक अकादमी' को जो और काम (बिल-वाउचर, मुद्रा बनाने) मिले हैं उसमें उसके अपने संग्रहालय की जिम्मेवारी है. उसमें संगीत से लेकर नाटक तक रिकार्ड करने की व्यवस्था है. इसके लिए सरकार ने सारे उपकरण दिये हैं. लेकिन यदा-कदा संगीत के, कुछ भी रिकार्ड नहीं होता. क्योंकि रंगमंच को रिकार्ड करना उसके अपने तर्क से बाहर की चीज है. अकादमी कहती है—हमें तो पुरानी संस्कृति को रिकार्ड करनी है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज जो कुछ हो रहा है यह कंटेंप्रेरी हैं. सूत्रधार को यह समझ में आ गया कि आज जो कुछ नाटक हो रहा है होने दीजिए यह तो वाकई कंटेंप्रेरी हैं. अकादमी कितनी समझदार और गंभीर है, इसी तर्क से पता चलता है. वह इस खोज में लगी है कि पिछले दो हजार साल से जो नाटक होते आ रहे हैं उन्हें रिकार्ड करेगी. जो लोग स्वर्गवासी हो गये हैं, कब्र में सो रहे हैं, उन्हें 'संगीत नाटक अकादमी' इज्जत के साथ बुलाएगी और उनके नाटकों को रिकार्ड करेगी. क्योंकि आज जो लोग हैं वे तो तब तक कंटेंप्रेरी रहेंगे जब तक जिंदा हैं. ओम शिवपुरी का—अंधायुग, अलकाजी का—तुगलक, जैसे तमाम नाटक इसी बिना पर रिकार्ड नहीं किये गये. रैना का 'कबीरा' 'ऐंटीगोनी', 'मदर', रंजीत कपूर का 'मुख्य मंत्री', शेखनर का 'चेरी का बगीचा', अमाल का 'महाभोज'... सथ्यू का 'बकरी'... कुछ भी रिकार्ड नहीं होगा... क्योंकि सब कंटेंप्रेरी है. दूसरी संस्था 'साहित्य कला परिषद' है. दिल्ली-सरकार की संस्था है, पुरस्कार देती है, नाटक करती है, लाखों इधर से निकालकर उधर करती है. लेकिन सूत्र एक ही है—अंधे की रेवड़ी... कवियों को पुरस्कार देगी तो उनकी चयन-समिति में छापेखाने के मालिक बैठेंगे. कविता बाद में, पुरस्कार पहले. नाटक प्रतियोगिता होगी तो चयनकर्त्ता सौ रुपया मात्र में बुलाये जायेंगे. पिछली नाटक-प्रतियोगिता के एक चयनकर्त्ता से जब इस सूत्रधार ने पूछा कि किस आधार पर आपने चयन किया तो जवाब था...

"सौ रुपया. एक घंटे का समय, चालीस स्क्रिप्ट. अब आप खुद समझ लीजिए, जो हाथ में आ गया उसे कर दिया, लाइए, एक सिगरेट पिलाइए."

सूत्रधार ने सिगरेट दे दी. ठीक उसी तरह जैसे चयनशुदा नाटकों को पुरस्कृत किया गया. निर्णायक मंडल जो सात सौ रुपये में तीन घंटे प्रतिदिन के हिसाब से सात दिन के लिए रोजी पर आया था, उसके एक सदस्य का दर्द यह नहीं था कि पैसे कम या ज्यादा मिल रहे थे, तकलीफ तो वह थी जो उन्हें तीन घंटे के हिसाब से एक हफ्ते तक देखना पड़ा. इसी तरह की संस्थाओं द्वारा सरकारी नाटक ऊपर चढ़ रहा है. दूसरी संस्था राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय है. इसके निदेशक बृजमोहन शाह स्तीफा दे चुके हैं. शांता गांधी इस बात पर तुली हुई हैं कि जो भी हो इस विद्यालय को बंद ही कर दिया जाये, उन्हें अपने अलावा अब तक कोई जमा ही नहीं. रपट लिखने तक जो सूचना मिली है उसके आधार पर रामगोपाल बजाज कार्यवाहक निदेशक का काम देख रहे हैं. □

लघुकथा

बख्शीश !

■ मातादीन खरवार

मिल के दफ्तर में, बड़े साहब के कमरे में बुहारी लगाते समय दया चपरासी को हीरे की अंगूठी मिल गयी. वह समझ गया, साहब की अंगूठी है, आजमाने के लिए गिरा दी होगी या अनजाने में ही गिर गयी होगी. इस समय दफ्तर बंद हो चुका है. चौकीदार को बताने से कुछ फायदा नहीं. कल सीधा साहब को ही दे देगा.

घर जाकर वह रात भर साहब के आचरण के बारे में सोचता रहा... साला! उस दिन कैसे बिगड़ रहा था. पूछ रहा था—"कितना पढ़ा है रे दया? कानूनी बातें बहुत करता है." उसने भी बेधड़क जवाब दिया था—"साहब, अपुन पढ़ा-लिखा होता तो अंगूठा-छाप क्यों होता? और कानून की बात तो भला अपुन अनपढ़ क्या जानेगा. इतना जरूर जानता है, ईमानदारी से रहना है और कोई लगनेवाली बात करे तो चुप नहीं रहना. इसके लिए नौकरी जाये, चाहे रहे!"

"साहब, ये रही आप की अंगूठी!" दूसरे दिन दया ने साहब के समक्ष अंगूठी पेश कर दी. थी

"तुझे कहां मिली रे?" साहब चकित हुआ, "रात को मेरी अंगुली में न देखकर मेम साहब पूछ रही थीं. मैंने बहाना बनाकर टाल दिया. कीमती अंगूठी है... मेम साहब को मालूम होगा, तो तुझे बख्शीश देंगी रे!"

दया सोच में पड़ गया. "अपुन अपना काम कर दिया. अब आप जानें. बख्शीश लेना बुरी बात नहीं है. आप देगा, अपुन लेगा, पर कितना देगा, इतना कि अपनी बीमारी का इलाज करवा सकूं? दीवाली पर औरत के लिए साड़ी और बच्चों के लिए कपड़ा-मिठाई ला सकूं?"

दूसरे दिन साहब ने दया को पुलकित कर देना चाहा, "दया! भई अपनी बख्शीश ले ले. मेमसाहब ने दिया है."

दया उत्सुकत होकर धड़कते दिल से साहब की ओर बढ़ा... और साहब ने एक पांच का नोट पकड़ा दिया. □

● कोशेर मटनशाप के पास, अहमदाबाद रोड, अंधेरी (पूर्व) बंबई-400093.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पखवारे की पुस्तक

अनुभव के खरेपन की कहानियां

चंद्रकांत बांदिवडेकर

चित्रा मुद्गल की कहानियों ने हिंदी कहानी के क्षेत्र में न केवल अपनी खास पहचान बना ली है बल्कि कहानी को समृद्ध भी किया है. वे मुख्यतः बाह्य परिवेश की छोटी-छोटी लड़ाइयों में नारी की आंतरिकता और उसका 'स्वत्व' पकड़ने का यशस्वी प्रयत्न करती हैं. जब कभी पुरुष-मन का चित्रण करने का प्रयास उन्होंने किया है, वहां भी अपनी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति एवं कल्पनाशील संवेदना का परिचय उन्होंने दिया है. उनका नारी-जगत मध्य वर्ग तक सीमित नहीं है. ऊंचे तबके के नारी-जगत के सच्चे सुख-दुखों के साथ जिस प्रकार वे उनकी फूहड़ सभ्यता को महीन व्यंग्य से उजागर करती हैं, उसी तरह सोसायटी में रहनेवाले अपराध जगत की मानसिक व्यथा को भी तीव्रता से संवेदित कराती हैं. छोटे बच्चों की हरकतों के ब्योरों में वे उनकी मानसिकता को अचूक पकड़ती हैं तो वयःसंधि की अवस्था, युवावस्था और प्रौढ़ावस्था की मानसिक हलचल और विशिष्ट मानसिक समस्याओं को भी उतनी ही मनोवैज्ञानिक गहराई से वे व्यंजित करती हैं. सामान्य जीवन की चहल-पहल में सामान्य-सी दिखनेवाली घटनाओं, स्थितियों और अवस्थाओं में लगातार व्यक्त होनेवाली मानसिकता की लय और नाटक को वे सहज रूप में चित्रांकित करती हैं.

'अपनी वापसी' में संग्रहीत उनकी छह कहानियों में से चार कहानियों का अनुभव नारी-मन के माध्यम से तो **'गर्दो'** और **'लिफाफा'** के अनुभव युवक के मन के माध्यम से उन्होंने व्यक्त किये हैं अर्थात् अन्य चरित्रों की मानसिकता पर उनकी नजर बराबर जमी रहती है.

सामान्यतः इस संग्रह में चित्राजी ने उस वर्ग की स्थिति-गति से अपनी घनिष्ट पहचान का प्रमाण दिया है जो हमारे देश में उच्च मध्यम वर्ग की संस्कृति की ओर उन्मुख वर्ग कहा जा सकता है. इस वर्ग की बोलचाल, भावभंगी, हावभाव, दिलचस्पियां, भावनात्मक सरोकार का स्वरूप, परस्पर ईर्ष्या-स्नेह, अपनापा-दूरी आत्मकेंद्रिकता-मानवीयता के तनाव भरे संबंध—सबका ठोस चित्र इन कहानियों में प्रकट होता है. इस वर्ग की भाषा का लहजा पकड़ने में चित्राजी को कमाल हासिल है. भाषा की खास अदा और चुस्त संवादों के जरिये केंद्रीय अनुभव को पुष्ट करने में बहुत हद तक चित्राजी सफल होती हैं.

'अपनी वापसी' की ढलती उम्र, उतरती और क्षीण होती जाने वाली सुख देने की ताकत के कारण परेशान शकुन प्रौढ़ावस्था की खास समस्या से पीड़ित है. पारिवारिक वास्तविकता के बीच उसकी व्यथा को चित्राजी ने गहरे स्तर पर पकड़ा है. अपने पति की उपेक्षा, सुंदर और जवान लड़की के प्रति सूक्ष्म-सा डाह, पति और पत्नी के बीच मुक्त मित्र-संबंधों से उत्पन्न निरर्थक परंतु सालनेवाला सूक्ष्म संदेह, अपनी असमर्थता का बोध और सबके बीच उत्पन्न बढ़ता मानसिक व शारीरिक अस्वाथ्य, शैथिल्य और अवसाद, आत्मकेंद्रिकता. चित्राजी ने यह व्यापक अनुभव बड़ी कलात्मकता से संप्रेषित किया है. **'दरमियान'** में दफ्तर में काम करने वाली मध्यवर्गीय नारियों की पीड़ा को खास दफ्तरी परिवेश के ठोस संदर्भ के बीच उपस्थित किया है. असल में इस पीड़ा के एक तात्कालिक कारण (मासिक धर्म की आकस्मिकता) को महिला कहानीकार ही पकड़ सकती हैं—महिला के खास अंदाज में. परंतु दफ्तर के वातावरण के बीच नारी की छटपटाहट और उपर्युक्त तात्कालिक पीड़ा के बाद भी चित्राजी इस कहानी में नारी के अधिक गहरे दुख को उघाड़ती हैं. घर और बाहर की तमाम तकलीफ के बाद भी (इस लड़की का पूरा सघन चित्र प्रस्तुत किया है चित्राजी ने) जहां नारी को अपने होने का सुख मिलता था (छोटी बच्ची मिनी के लिए अपने जीवन के होने का) वही सुख उससे छिन जाता है, क्योंकि मिनी मां की अनुपस्थिति से भी समझौता करती है. मां को लगता है— **उसकी अहमियत छिन गयी है.** इन शून्य की शक्ल में समूचे अस्तित्व पर पसरनेवाले गहन अवसाद को चित्राजी ने समर्थ सूझ-बूझ के साथ प्रकट किया है. जिंदगी को ही कुछ निरर्थक-सा बना देनेवाला अनुभव—वैसे तो हर नारी के जीवन में आनेवाला यह अनुभव चित्राजी ने पूरी तन्मयता के साथ व्यक्त किया है. यह अनुभव आत्मीयता को गहरे जीवित रखने वाली कामकाजी महिला का है. **'शून्य'** में भी पुरुष प्रधान समाज में पुरुष के अहंकार और उसकी ज्यादती के अनेक पहलुओं के बीच चित्राजी ने भारतीय मां की संस्कारशीलता के कारण उत्पन्न वेदना को ही सामने रखा है. **'मोर्चे**

अपनी वापसी : चित्रा मुद्गल; प्रकाशक : संभावना प्रकाशन, रेवती कुंज, हापुड़; पृष्ठ संख्या : 122; मूल्य : 22 रुपये.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर' की किन्ना तो इस मातृत्व का एक समर्थ परिचय अपनी असफलता में भी दे जाती है. पति सुदीप के द्वारा अभिशप्त लाड़-प्यार में पले दोनों बच्चों को सुदीप की मृत्यु पर उनका बाप और मां बनकर किन्ना पालना चाहती है पर असफल रहती है. उसके सारे मानसिक संघर्ष में जमा कठोर दुख चित्राजी पूरी सूक्ष्मता के साथ व्यंजित करती हैं. तमाम पारिवारिक संदर्भों की चित्रात्मक बुनावट के बीच चित्राजी जिस वेदना, व्याकुलता, तकलीफ और कराह को उभारती हैं, वह कहानी को टिकाऊपन का एक अमृत-स्पर्श देता है. इन समस्त नारियों की सभ्यता पश्चिमी रंग से रंजित है, परंतु उनकी मानसिकता के सारे तनावों के मूल्य में वही संस्कार हैं--निष्ठा और श्रद्धा के, आस्था और मातृत्व के. नारी को फूहड़ स्तर पर ले आनेवाली तथाकथित आधुनिकता की चमक-दमक से लैस कहानियों के बीच यह परंपरा और प्रगतिशीलता के बीच संतुलन को साधनेवाली नारियों का चित्रण कितना आश्वस्त करता है.

यह तकलीफ अलग ढंग और अलग कोण से **'लिफाफा'** में व्यक्त हुई है. व्यावहारिक जीवन के बीच विचित्र करवटें लेनेवाले मानवीय संबंधों का 'मेटामार्फोसिस' आज अनेक कहानियों में व्यक्त हो रहा है. ऐसी कहानियों में चित्राजी की **'लिफाफा'** उषा प्रियंवदा की **'वापसी'** के बाद एक महत्वपूर्ण कहानी है. सबसे अधिक पवित्र, अत्यधिक कोमल और निरपेक्ष समझे जाने वाले मां के प्यार का आधार भी व्यावहारिक उपयोगिता है, जब यह कटु सत्य पीना पड़ता है तो उसकी व्यथा बड़ी तकलीफदेह होती है. भावुकता के स्तर पर जरा भी न उतरते हुए चित्राजी ने सामान्य जीवन के तथ्यों के बीच से इस वेदना को उभारा है.

चित्राजी की इन कहानियों में मुझे एक और महत्वपूर्ण पक्ष दिखाई पड़ा. ये कहानियां यथार्थ की कटु वेदना-सिक्त तकलीफदेह पर्तें खोलती हुई

● चित्रा मुद्गल

भी जीवन में निराशा या पराजय का चरम बोध उत्पन्न नहीं करतीं.

'गर्दी' में उसका एक रूप प्रकट होता है. पारिवारिक संस्कारों की सड़न से अपने को बचाकर, नायक मित्र की विधवा पत्नी के साथ जड़ने का निर्णय कर लेता है, लेकिन जीवन की आस्था का बोध देनेवाली अन्य कहानियां अधिक महत्वपूर्ण हैं. **'अपनी वापसी'** की शकुन का संकल्प है--**नहीं नहीं, मैं जिऊंगी! 'दरमियान'** की मिन्नी की मां शून्य के अवसाद से घिरकर भी जीयेगी. उसकी समस्त पूर्ववर्ती चहल-पहल यही दिखाती है कि इस दुख के बाद भी उसे जिंदगी जीने में अनेक स्तरों पर समझौता करना पड़ता है. हमारे सनातन शास्त्रों में भी आपात्काल में जीवन रक्षा के लिए अधर्म के साथ भी समझौते का तर्क है. जिंदगी की रक्षा अपने आप में एक बड़ा मूल्य है. **'लिफाफा'** का नपुंसक की अवस्था तक पहुंचने वाला अशोक भी मां के प्यार की सीमा के बावजूद जियेगा. **'शून्य'** की सरल तो दीपू के लिए पति के साथ लड़ने का संकल्प करती है. **'मोर्चे पर'** की किन्ना मां और बाप बनने की लड़ाई में हारती है परंतु जीवट उसे जिलायेगी. समस्त कहानियों में यह आस्था का स्वर है जो प्रकट हार में भी छिपा संगीत सुनाकर विमुग्ध करता है.

चित्राजी कहानियों का प्रारंभ चरित्र की मनःस्थिति के 'क्लाइमैक्स' के साथ करती हैं, फिर पूर्व दीप्ति और वर्तमान स्थिति के कलात्मक सह-अस्तित्व के कारण अनुभव को गहरा देती हैं. कहानी के विकास के दौरान अनुभव की ओर देखने के 'एंगल्स' बदलती हैं, विभिन्न चरित्रों की आंख से अनुभव को देखती हैं, कभी खुद विवरण भी देती हैं. परंतु लगातार अनुभव के केंद्रीय रूप को मद्देनजर रखती हैं. कहीं हास्य के छिड़काव से तनाव को ढील देती हैं. यह इतनी सहजता से चलता है कि ऊपर से सब अनायास, आसान लगता है, लेकिन मेरा अपना सोच है कि यह बहुत परिश्रम से अर्जित सहजता है. एक निरंतर अभ्यास की प्रक्रिया सृजन को ऊपर से सहज दिखाती है.

सामान्यतः कहानी में घटित घटनाओं को पार्श्व में रखकर उनसे उद्भूत मन की हलचल को ही वे व्यक्त करती हैं, परंतु कहीं ये घटनाएं जरूरत से ज्यादा 'कंट्राइव्ड' कर जाती हैं. मसलन **'शून्य'** में राकेश और बेला के संबंधों को अनावश्यक चक्करदार बनाया है. **'मोर्चे पर'** के बच्चों के लाड़-प्यार के विवरण जरूरत से ज्यादा विस्तार पाते हैं. **'लिफाफा'** के अशोक की नपुंसकता को (मनोवैज्ञानिक सत्य के बावजूद) अनावश्यक स्थान दिया गया है, लेकिन ऐसे स्थल विरल हैं.

आज की कहानी में परंपरा के संस्कार और आधुनिकता की जो खींचतान हो रही है, संस्कृति और सम्मान के बीच जो दरारें पैदा हुई हैं, स्त्री और पुरुष के संबंधों के बीच जो अतिरेकपूर्ण भड़कीलापन दिखाने की प्रवृत्ति बलवती हो रही है, बाह्य परिवेश और आंतरिक संवेदना के बीच अनावश्यक द्वंद्व संबंध मानकर किसी एक सिरे को पकड़ने का अतिरेक हो रहा है, समस्यात्मक, जटिल जीवन के बीच आस्था और अनास्था को दो ध्रुवों पर खड़े होकर मिलान बिंदु की खोज के प्रति उपेक्षा दिख रही है, इस सबके बीच चित्राजी की कहानियां अनेक स्तरों पर संतुलन खोजती हैं और कहानी के स्वत्व और तर्क के बल पर जीवन के प्रति आस्था सुरक्षित रखती हैं--यह बहुत अच्छा लगता है. चित्राजी अपनी ओर से कुछ नहीं बोलतीं, कदाचित उनकी कहानियां जो व्यंजित करती हैं, उससे भी कहीं वे अनजान होने की स्थिति तक चुप रहती हैं--क्योंकि उनके अनुभव में खरापन और बल है. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरोध...
इसलिये कि बच्चा होने के पहले आपको प्यार और खुशियां प्राप्त करने के अनेक अवसर मिलें

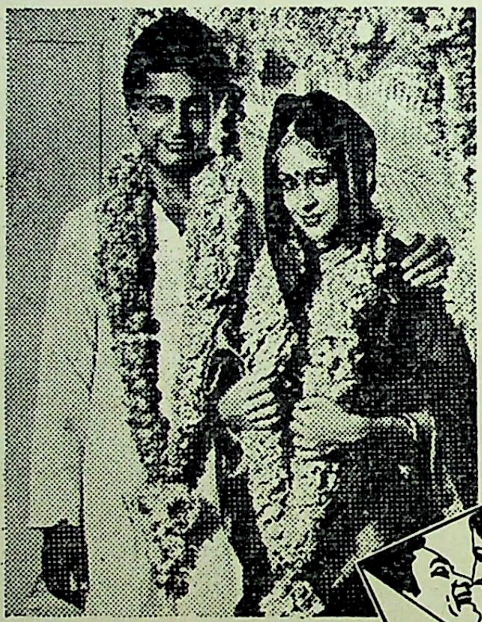

आम तौर पर जब आपको एक साथ रहने की जरूरत पड़ती है, निरोध आपको एक साथ रहने में सहायता प्रदान करता है। यह आपको प्रथम बच्चे को दुनिया दिखाने की योजना तैयार करने हेतु पर्याप्त समय प्रदान करता है।

निरोध प्रयोग कीजिये

सुखी और निश्चिन्त वैवाहिक जीवन के लिये—

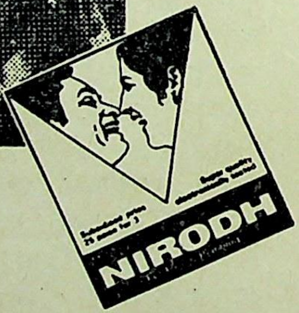

वितरक : ब्रुक-बॉण्ड, लिपटन, हिन्दुस्तान लीवर, आई. टी. सी., टाटा ऑयल मिल्स, यूनियन कारबाइड, आईडीपीएल, स्मिथ स्टैनिस्ट्रीट, इण्डियन ऑयल कॉरपोरेशन, भारत पेट्रोलियम, हिन्दुस्तान पेट्रोलियम और अरसन मैच इण्डस्ट्रीज।

davp 83/221

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हलचल

रेणु साहित्य की उपेक्षा हुई है!

पिछले दिनों हजारीबाग (बिहार) में 'रचना शिविर' के तत्वावधान में दो दिनों का फणीश्वरनाथ रेणु पुरस्कार समारोह आयोजित किया गया. 1983 का यह पुरस्कार हिंदी के प्रतिष्ठित लेखक शैलेश मटियानी के उपन्यास 'मुठभेड़' पर मिला. समारोह की अध्यक्षता डॉ. सुरेंद्र चौधरी ने की. कथाकार सच्चिदानंद धूमकेतु के हाथों यह पुरस्कार शैलेश मटियानी को प्रदान किया गया. प्रारंभ में श्री मटियानी का साहित्यिक परिचय डॉ सत्यप्रकाश मिश्र ने दिया. पुरस्कृत पुस्तक 'मुठभेड़' पर डॉ. चंद्रेश्वर कर्ण ने अपना आलेख प्रस्तुत किया. आभार व्यक्त करते हुए शैलेश मटियानी ने कहा, "मैं ऐसा मानता हूं कि किसी लेखक को स्वयं अपने साहित्य पर नहीं हीं बोलना चाहिए. उसका काम साहित्य लिखना है. लेखक का काम स्वयं को उपस्थित करना नहीं; लोगों को उपस्थित करना है."

अध्यक्ष पद से बोलते हुए डॉ. चौधरी ने कहा, "शैलेश मटियानी अथवा रेणु ही नहीं, ऐसे बहुत से रचनाकार हैं, जिनका उत्सर्जन तो हुआ, लेकिन मूल्यांकन करने के सिलसिले में हमारे प्रखर आलोचकों ने व्यक्तियों का पुनर्मूल्यांकन तो किया, पूरी धारा का पुनर्मूल्यांकन किया ही नहीं. . . क्या कारण है कि रेणु की उपेक्षा उनके द्वारा हुई, जिनके साथ वे लेखन कर रहे थे.

पहली गोष्ठी का विषय था—'समकालीन हिंदी कहानी का वैचारिक संघर्ष'. इस गोष्ठी की अध्यक्षता डॉ. सुरेंद्र चौधरी ने की. विषय प्रवर्तन मूलचंद गौतम ने किया.

बहस में हिस्सा लेते हुए राजकुमार सैनी ने कहा, "हमारा समाज बहुत-सी जटिलताओं से घिरा हुआ है. आत्मसंघर्ष और बाहर का संघर्ष इतना सरल और सपाट नहीं है कि सीधे-सीधे उसको उतार दें."

डॉ. नागेश्वर लाल ने कहा कि "कहानीकारों का जो वैचारिक संघर्ष है, वह मुझे व्यक्तित्व बनाने का संघर्ष लगता है."

अवध नारायण मुद्गल ने बहस को आगे बढ़ाते हुए कहा कि कोई भी रचनाकार रचना प्रक्रिया में अकेला होता है. उस समय उसके सामने गुटबंद वैचारिकता नहीं होती. उसके सामने सिर्फ रचना होती है, जिसे वह अपने पाठकों तक पहुंचाना चाहता है. उस समय उसका काम परकाया प्रवेश का होता है.

शैलेश मटियानी के विचार में, "रचना अपने आप में सामाजिक सृष्टि है और जो लेखक पाठक को इंकार करता है, उसे लिखने का हक नहीं है. राजेंद्र प्रसाद सिंह ने कुछ कथाकारों पर तीखा प्रहार करते हुए कहा कि कुछ रचनाओं में प्रतिबद्धता हो सकती है, ऐसे रचनाकार प्रतिबद्ध हो सकते हैं या विचारधारा का इस्तेमाल करना भी जानते हैं, लेकिन हो सकता है कि वैचारिक संघर्ष न हो.

अपने अध्यक्षीय भाषण में डॉ. चौधरी ने कहा कि साहित्य लेखन एक जरूरत है, जिसके बिना आदमी अधूरा रहेगा." इसके अतिरिक्त रविभूषण, भारत यायावर, नचिकेता, हरिहर प्रसाद आदि ने भी बहस में हिस्सा लिया.

दूसरी गोष्ठी का विषय था—'रेणु का रचना-संसार.' इस गोष्ठी की अध्यक्षता डॉ. नागेश्वर लाल ने की. सच्चिदानंद धूमकेतु ने विषय प्रवर्तन आलेख-पाठ से किया. राजेंद्र प्रसाद सिंह ने भी अपना आलेख—'रेणु की कृतियों पर समाजशास्त्रीय अध्ययन की मांग' पढ़ा.

डॉ. सुरेंद्र चौधरी ने रेणु साहित्य पर विचार व्यक्त करते हुए कहा कि गांवों में जो जीवित रिश्ता बदला है, रेणु उसके लेखक हैं. रेणु के साथ बेईमानी की गयी. यह बेईमानी मित्रों ने की और राजनीतिज्ञों ने भी की.

डॉ. नागेश्वर लाल ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा, "जो विशिष्ट अनुभवों का चित्रण करने को श्रेष्ठ मानेंगे, वे आंचलिकता को अवश्य श्रेष्ठ मानेंगे. रेणु ने यथार्थ का सरलीकरण नहीं किया. रेणु की कृतियों से गुजरते हुए लगता है कि वे यथार्थ का वर्णन कर रहे हैं. □

● डॉ. चंद्रेश्वर कर्ण

CC-0. In Public Domain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar